CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीभर्तृहरिविरचितम्

नीतिशतकम्

(संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या सहितम्)

संस्कर्त्ता

जनार्दनशास्त्री पाण्डेयः

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: वाराणसी :: पटना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीभर्तृहरिविरचितम्

नीतिशतकम्

[अन्वय-पदार्थ-व्याख्या-भावार्थ-भाषार्थ-सहितम्]

सा॰ ८९९

संस्कर्ता
जनार्दनशास्त्री पाण्डेयः
एम॰ ए॰, साहित्याचार्यः

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली :: वाराणसी :: पटना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

© मोतीलाल बनारसीदास
CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतीय संस्कृति ग्रन्थमाला के प्रमुख प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता
प्रधान कार्यालय : अ. उल्लाह मार्ग, जवाहर नगर, दिल्ली-७
शाखाएं : १. चौक, वाराणसी-१ (उ० प्र०)
२. अशोक राजपथ, पटना-४ (बिहार)

तृतीय संस्करण, वाराणसी, १९७४
पुनर्मुद्रण : दिल्ली, १९७६
मूल्य : रु० 3.00

भारत सरकार द्वारा उपलब्ध किये गये
रियायती मूल्य के कागज पर मुद्रित ।

सुन्दरलाल जैन, मोतीलाल बनारसीदास, अ. उल्लाह मार्ग, जवाहर नगर, दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित तथा शान्तिलाल जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस, ए-४५, फेस-१, इंडस्ट्रियल एरिया, नारायणा, नई दिल्ली-२८ द्वारा मुद्रित ।
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

★ श्रीः ★

प्रास्ताविकम्

संस्कृत वाङ्मयके प्रणेताओंमें भर्तृहरिका नाम सुविख्यात है। इनके द्वारा प्रणीत शतकत्रय—नीतिशतक, शृङ्गारशतक और वैराग्यशतक—चिरकालसे इस वाङ्मयकी शोभा बढ़ा रहा है। जैसा कि हम प्रायः निश्चित कर चुके हैं भारतीय कवियों एवं विद्वानोंने जीवनको ही महत्त्व प्रदान किया है जीवनीको नहीं, भर्तृहरि भी इसके अपवाद नहीं हैं। हम निश्चित रूपसे इनके विषयमें कुछ नहीं कह सकते। लोकमें प्रचलित आख्यायिकाओं एवं किंवदन्तियोंसे हमें भर्तृहरिके कई रूप दीखते हैं। महाभाष्यदीपिका एवं वाक्यपदीय जैसे उत्कृष्ट व्याकरण ग्रन्थोंके प्रणेता, पूर्वोक्त शतकत्रयके प्रणेता, विख्यात नृपति विक्रमादित्यके कनिष्ठ भ्राता, भट्टिकाव्यके रचयिता तथा एक प्रसिद्ध योगीके रूप में भी भर्तृहरिका नाम सुना जाता है। कुछ लेखकोंका यह भी कथन है कि ये बौद्ध थे। इन सब उक्तियोंमें तथ्य क्या है? यह तो राम जाने, किन्तु इतना प्रायः निश्चित है कि शतकत्रयके रचयिता भर्तृहरि बौद्ध नहीं थे। इनकी रचना इस कथनकी प्रत्यक्ष साक्षी है कि ये उच्चकोटिके कवि, शास्त्रज्ञ विद्वान्, परम आस्तिक, देवाराधक थे तथा इन्होंने पूर्ण राजसुखका उपभोग किया था।

चीनी यात्री इत्सिंगने लिखा है कि "जब वह भारतमें था उससे कुछ ही वर्षों पूर्व वहाँ एक विशिष्ट वैयाकरण भर्तृहरिकी मृत्यु हुई थी" इस दृष्टिसे इनका काल सप्तम शताब्दी होता है किन्तु हमारा अपना विचार है कि ये इससे बहुत अधिक प्राचीन हैं।

भर्तृहरिकी रचना संस्कृत वाङ्मयके उत्कृष्ट रूपका निदर्शन करती है, गागरमें सागर भरनेकी जो विलक्षण क्षमता संस्कृत भाषामें है वह इनकी रचनामें पूर्णरूपसे सार्थक हुई है। इनके इस नीतिशतकको नीतिविषयक सुभाषितोंका संग्रह कहा जा सकता है। यह मुक्तक काव्य है। मुक्तकका लक्षण अग्निपुराणमें इस प्रकार है—

"मुक्तकं श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षमं सताम्"

अर्थात् मुक्तक वह काव्य है जिसका प्रत्येक श्लोक स्वतंत्र रूपसे अपने सर्वाङ्गीण अर्थ-प्रकाशनमें पूर्ण समर्थ होकर सहृदयोंके हृदयमें चमत्कारका आधायक होता है। इसके एक पद्यका दूसरे पद्यसे कोई संबन्ध नहीं होता। भर्तृहरिके तीनों शतकोंमें केवल प्रकरणकी दृष्टिसे शृङ्गारिक पद्य शृङ्गारशतकमें, वैराग्यविषयक वैराग्यशतकमें तथा नीतिविषयक नीतिशतकमें रखे गये हैं। केवल प्रकरणगत एकताका ही इनमें परस्पर संबन्ध है, अन्यथा इनका प्रत्येक पद्य अपने में स्वतः पूर्ण है और अकेला ही रस-चर्वणकी सामर्थ्य रखता है। यह असन्दिग्ध रूपसे कहा जा सकता है कि नीतिरत्न, नीतिप्रदीप, नीतिसार, चाणक्यनीति आदि नीतिविषयक जितने भी सूक्तिपरक पद्य संग्रह हैं उन सबमें भर्तृहरिका नीतिशतक सर्वश्रेष्ठ है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

यद्यपि नीतिशतकके कई संस्करण मुद्रित हुए हैं किन्तु प्रस्तुत संस्करणको इस दृष्टिसे तैयार किया गया है कि जिससे एक बारके पढ़नेसे ही प्रत्येक श्लोकका उचित संस्कार पाठकके हृदय पर अंकित हो जाय। क्योंकि श्लोकके बाद अन्वय, फिर अन्वयक्रमसे ही प्रत्येक पदका हिन्दीमें अर्थ, तब संस्कृतमें व्याख्या, फिर पूरे श्लोकका संस्कृतमें भावार्थ और हिन्दीमें भाषार्थ इस प्रकार एक ही बारके पढ़नेमें प्रत्येक श्लोककी छ आवृत्तियाँ हो जाती हैं। हमें आशा है कि इस प्रक्रियासे परीक्षार्थी छात्रोंको तो लाभ होगा ही, सामान्य पाठकको भी इससे श्लोकके भावको समझनेमें सहायता मिलेगी।

इस संस्करणको प्रस्तुत करनेमें साहित्याचार्य पं० रामायण द्विवेदी, अनुसंधाता वाराणसेय संस्कृत वि० वि०, से जो सहयोग प्राप्त हुआ है उसके लिये हम उन्हें धन्यवाद देते हैं और विद्वज्जनोंसे निवेदन करते हैं—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

— जनार्दनशास्त्री पाण्डेय

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषय-सूची

	विषय	पृष्ठ
१	गुणग्राहकोंका अभाव	१
२	अधूरा ज्ञान कष्टकर होता है	२
३	मूर्खको संतुष्ट नहीं किया जा सकता	२
४	दुर्जनोंको सन्मार्गपर लाना कठिन है	४
५	मूर्खोंके लिये मौन रहना श्रेयस्कर है	५
६	विद्वानोंके संगसे वास्तविकताका ज्ञान	६
७	नीचकी नीचता	७
८	विवेकहीनोंका पतन	८
९	मूर्खताका कोई परिहार नहीं होता	९
१०	मनुष्यरूपमें पशु	१०
११	मूर्खोंका संसर्ग त्याज्य है	१२
१२	विद्वानोंका आदर करना चाहिये	१२
१३	विद्वानोंको धनसे वशमें नहीं किया जा सकता	१४
१४	विद्वानोंके गुणोंका अपहरण नहीं होता	१५
१५	वाणी सबसे बड़ा आभूषण है	१६
१६	विद्याकी महिमा	१७
१७	विद्याके प्राधान्यको उदाहरणों द्वारा पुष्टि	१८
१८	सत्सङ्गकी महिमा	२१
१९	कवियोंकी महिमा	२१
२०	भगवत्कृपाका फल	२२
२१	कल्याणका मार्ग	२३
२२	अधम-मध्यम और उत्तमका अन्तर	२४
२३	सज्जनताको निभाना कितना कठिन है	२५
२४	सज्जन अपनी महत्ताको नहीं खोते	२६
२५	फलकी आकांक्षा भी पुरुषार्थके अनुरूप होती हैं	२७
२६	उत्तम-अधमका निदर्शन	२८
२७	जन्मका साफल्य	२९
२८	मनस्वीकी दो गतियाँ	२९
२९	महान्‌का वैर भी महान् से होता है	३०
३०	महत्ताका परिमाण नहीं होता	३१
३१	औचित्यका विचार होना चाहिए	३२
३२	तेजस्वी अपमान नहीं सह सकते	३३
३३	तेजस्वितामें अवस्था कारण नहीं	३३
३४	धनकी महिमा	३४
३४	कौन किससे नष्ट होता है	३६
३५	धनकी तीन दशाएँ	३७
३६	दान करके गरीब होनाभी गौरव है	३८
३७	परिस्थितिके अनुसार ही वस्तुका लाघव या गौरव होता है	३९
३८	प्रजा पालनसे ही सर्वार्थसिद्धि	४०
३९	राजनीतिकी वेश्यासे तुलना	४१
४०	राजाओंके छ गुण	४१
४१	भाग्यके अनुसार ही धन मिलता है	४२
४२	महान् व्यक्ति प्रार्थनाकी प्रतीक्षा नहीं करते	४३
४३	जिस किसीके सामने दीनता प्रकट करना उचित नहीं	४४
४४	दुर्जनका लक्षण	४५
४५	दुर्जनकी ...	४०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषय	पृष्ठ
४३ दुर्जनों द्वारा गुणीमें दोषत्वारोप	६१
४४ हेय और उपादेयका उपदेश	६२
४५ क्रोधसे हानि	४९
४६ सेवकको कठिनता	५०
४७ खलों एवं सज्जनोंकी मैत्रीमें अन्तर	५२
४८ अकारणवैरी	५२
४९ वन्दनीय सज्जनोंके लक्षण	५३
५० महापुरुषोंका लक्षण	५४
५१ सज्जनताका काठिन्य	५५
५२ महापुरुषोंके स्वाभाविक अलंकरण	५६
५३ सज्जनोंकी विलक्षणता	५७
५७ संगतिके अनुसार गुणोंकी उत्पत्ति	५७
५८ बड़े पुण्योंसे प्राप्त होनेवाले पदार्थ	५८
५९ आश्रय एकका ही करना चाहिए	५९
६० अभिनन्दनीय सज्जन	६०
६१ परोपकारियोंका स्वभाव	६१
६२ वास्तविक आभूषण	६२
६३ सन्मित्रका लक्षण	६२
६४ सज्जनोंकी प्रेरणा आवश्यक नहीं	६३
६५ मनुष्योंकी चार श्रेणियाँ	६४
६६ सज्जनोंकी मैत्रीका दृष्टान्त	६५
६७ महान्‌की महत्ता	६६
६८ सज्जनोंके लक्षण	६७
६९ महापुरुष प्रायः दुर्लभ होते हैं	६८
७० गुणवान् ही प्रशंसार्ह है	६९
७१ धीरजन निर्धारित कार्यको पूर्ण ही करते हैं	७०
७२ मनस्वी व्यक्ति कार्यसिद्धिके लिए सुख-दुख नहीं गिनते	७०
७३ शील ही सर्वोत्कृष्ट भूषण है	७१
७४ धीर पुरुष न्यायमार्गसे विचलित नहीं होते	७२
७५ भाग्य ही मनुष्योंकी उन्नति अवनतिमें कारण है	७३
७६ महान् शत्रु और उत्कृष्ट बन्धु	७४
७७ दुःखके बाद सुख अवश्य आता है	७५
७८ पुरुषार्थसे भाग्यकी बलवत्ता	७६
७९ विचारपूर्वकही कार्य करना चाहिए	७७
८० भाग्यहीनके लिए सर्वत्र विपत्ति ही है	७९
८१ पुनः भाग्यकी बलवत्ताका निदर्शन	७८
८२ अनुचितकारी विधाता	७९
८३ भाग्यरेखा कोई नहीं मेट सकता	८०
८४ कर्मको महिमा	८१
८५ पूर्व सुकृत ही रक्षा करते हैं	८४
८६ सत्कर्मकी करणीयता	८५
८७ अविचार पूर्वक किए गये कार्यका परिणाम	८६
८८ सत्कर्मसे विमुख होना मूर्खता है	८६
८९ अनहोनी होती नहीं, होनी टलती नहीं	८७
९० पूर्व सुकृतोंसे सर्वत्र अनुकूलता होती है	८८
९१ लाभ आदिको वास्तविकताका निदर्शन	९०
९२ सत्पुरुष कहीं कहीं मिलते हैं	९०
९३ धीरका धैर्य नहीं छूटता	९१
९४ धीरकी महिमा	९२
९५ शूरका महत्व	९२
९६ शीलको महिमा	९३
९७ दृढ़ प्रतिज्ञकी महिमा	९४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

नीतिशतकम्

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मंगलाचरण

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

अन्वयः—दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये, स्वानुभूत्येकमानाय, शान्ताय, तेजसे, नमः ।

पदार्थ—दिक्कालाद्यनवच्छिन्न- = दिशाओं एवं कालादिसे जिसे मापा नहीं जा सकता ऐसे, (तथा) अनन्त- = अन्तरहित, चिन्मात्रमूर्तये = चैतन्यरूप विग्रहवाले । स्वानुभूत्येकमानाय = अपना अनुभवमात्र जिसमें प्रमाण है, ऐसे शान्ताय = कल्याणकारक । तेजसे = ज्योतिरूप (परमात्माके लिये) नमः = नमस्कार है ।

व्याख्या—दिगिति । दिशः = काष्ठाः (प्राच्यवाचीप्रतीच्युदीच्यः) कालाः = समयाः च (भूतः वर्तमानं भविष्यच्च) आदयो येषान्ते दिक्कालादयः, दिक्कालादिभिः [न अवच्छिन्ना] अनवच्छिन्ना = अपरिमिता (अतएव) [न अन्तः यस्याः सा] अनन्ता = चिरस्थायिनी चासौ, [चिदेव चिन्मात्रं, मूर्तिः यस्य स] चिन्मात्रमूर्त्तिः = चैतन्यात्मकः, तस्मै । स्वानुभूत्येकमानाय [स्वस्य = आत्मनः, अनुभूतिः = अनुभवः, एकं मानं = प्रमाणं यस्य तत् , तस्मै] = स्वानुभवैकवेद्याय । शान्ताय = शान्तरूपिणे । तेजसे = ज्योतिःस्वरूपाय, नमः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।

भावार्थः—पूर्वादिदिग्भिः भूतादिकालैः अवस्थारूपादिभिश्चोपाधिभिरपरिमितत्वादनन्तचैतन्यस्वरूपिणे, स्वानुभवैकवेद्याय तेजोमूर्तये नमोऽस्तु ।

भाषार्थ—दिशा काल अवस्था आदिकी उपाधियोंसे रहित, अनन्त, चैतन्यस्वरूप, अपने अनुभव मात्रसे जाने जा सकने योग्य, शान्त, तेजस्वरूप परंब्रह्मके लिये नमस्कार है ॥१॥

गुणग्राहकोंका अभाव—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥२॥

अन्वयः—बोद्धारः, मत्सरग्रस्ताः, प्रभवः, स्मयदूषिताः, अन्ये, च अबोधोपहताः, सुभाषितम् , अङ्गे, जीर्णम् ।

पदार्थ—बोद्धारः = (सुभाषितको) समझनेवाले । मत्सरग्रस्ताः = द्वेषसे भरे हैं । प्रभवः = स्वामी (समर्थ-अधिकारी) स्मयदूषिताः = घमण्डमें चूर हैं । च = और, अन्ये = सामान्यजन । अबोधोपहताः = अज्ञानसे विनष्ट हैं । (इसलिये) सुभाषितं = सदुक्ति । अङ्गे = शरीरमें (ही) । जीर्णम् = पुराना हो रहा है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—बोद्धार इति । [बुध्यन्ति इति] बोद्धारः=ज्ञानिनो विद्वांसः । मत्सरेण = द्वेषेण (मत्सरोऽन्य शुभद्वेषः—इत्यमरः) ग्रस्ताः = निगीर्णाः द्वेषेणावृता॰इत्यर्थः । प्रभवः = समर्थाः राजानः धनिनो वा, स्मयेन = अहंकारेण दूषिताः = मलिनाः । अन्ये च = इतरे सामान्यजनाः अबोधेन = अज्ञानेन उपहताः = प्रताडिताः सुभाषितं = कालोपयोगि शोभनं वचनं । अङ्गे = वक्तुः मुखे एव जीर्णं = परिणतम् । अत्राऽनुष्टुप्छन्दः ।

भावार्थ—जो सुभाषितको समझनेवाले विद्वान् हैं वे द्वेषसे भरे हैं, साधन-सम्पन्न व्यक्ति जो सुभाषितका आदर करते, घमंडमें चूर हैं और साधारण व्यक्तियोंको उसे समझनेका ज्ञान नहीं, इसीलिये ये सदुक्तियाँ (कहनेवालेके) मुखमें ही जीर्ण हो रही हैं ॥ २ ॥

अधूरा ज्ञान कष्टकर होता है—

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ॥३॥

अन्वयः—अज्ञः, सुखम्, आराध्यः, विशेषज्ञः, सुखतरम्, आराध्यते, ज्ञानलवदुर्विदग्धं, तं नरं, ब्रह्मापि, न रञ्जयति ।

पदार्थ—अज्ञः = न जाननेवाला (मूढ़) व्यक्ति, सुखं = आसानीसे, आराध्यः = समझाया जा सकता है । विशेषज्ञः = विशेषरूपसे जानकार (विद्वान्) व्यक्ति, सुखतरं = अत्यन्त आसानीसे । आराध्यते = संतुष्ट किया जा सकता है, ज्ञानलवदुर्विदग्धं = ज्ञानके अंश (अल्पज्ञान) से गर्वित, तं नरं = उस मनुष्यको तो, ब्रह्मापि = ब्रह्माजी भी, न रञ्जयति = नहीं प्रसन्न कर सकते ।

व्याख्या—अज्ञः [जानातीति ज्ञः, न ज्ञ इत्यज्ञः] = मूढः (मनुष्यः) सुखम् = यत्नं विनैव आराध्यः = आराधयितुं योग्यः, विशेषज्ञः [विशेषेण जानातीति] = तत्त्वज्ञानी, सुखतरम् [अतिशयितं सुखं सुखतरम्, सुखतरं यथास्यात्तथा] = अत्यन्तानायासेन, आराध्यते = अनुकूलयितुं शक्यते; (किन्तु) ज्ञानलवदुर्विदग्धम् [ज्ञानस्य लवेन = लेशेन दुर्विदग्धः = गर्वितमानसः तम्] तं नरं = तं पुरुषं, ब्रह्माऽपि = विधातापि । न रञ्जयति = न प्रसादयितुं शक्नोति । आर्या छन्दः । (तल्लक्षणं ३७ श्लोके टीकायां द्रष्टव्यम्) ।

भावार्थः—मूढो जनः सुखेन बोधयितुं शक्यः, विद्वांस्तु नितरामनायासेनैवानुकूलयितुं शक्यः, किन्तु स्वल्पेनैव ज्ञानेन गर्वितमानसं जनं ब्रह्मापि न प्रसादयितुं शक्नोति मनुष्याणां तु कथैव का ।

भावार्थ—मूर्ख मनुष्यको शीघ्र ही प्रसन्न किया जा सकता है एवं विशेष बुद्धिमान् और भी आसानीसे अनुकूल बनाया जा सकता है । किन्तु थोड़ा-सा ज्ञान पाकर इतरानेवाले मनुष्यको तो स्वयं ब्रह्मा भी नहीं प्रसन्न कर सकते, मनुष्यकी तो बात ही क्या है ? ॥३॥

मूर्खको संतुष्ट नहीं किया जा सकता—

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्
समुद्रमपि संतरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारये-
CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥४॥

अन्वयः—मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्, मणिं, प्रसह्य, उद्धरेत्, प्रचलदूर्मिमालाकुलं समुद्रम्, अपि, संतरेत्, कोपितं, भुजङ्गम् अपि, पुष्पवत्, शिरसि, धारयेत्, तु, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं न आराधयेत्।

पदार्थ—मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्=मगरके मुखमें स्थित दाढ़ोंके बीचसे, मणिम्=रत्नको, प्रसह्य=बलपूर्वक, उद्धरेत्=निकाल ले। प्रचलदूर्मिमालाकुलं= चंचलतरङ्गोंकी पंक्तियोंसे भीषण, समुद्रमपि संतरेत्=समुद्रको भी पार करले। कोपितं=क्रुद्ध हुए, भुजंगमपि=सर्पको भी, पुष्पवत्=फूलकी तरह, शिरसि धारयेत्=शिरमें धारण करले। तु=किन्तु, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं=हठी मूर्ख व्यक्तिके मनको। न आराधयेत्=रिझानेकी चेष्टा न करे।

व्याख्या—(मनुष्यः) मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात् [मकरस्य वक्त्रमिति मकरवक्त्रं, तस्य या दंष्ट्राः मकरवक्त्रदंष्ट्रास्तासामन्तरमिति, तस्मात्]=ग्राहमुखस्य दंष्ट्राभ्यन्तरात्। प्रसह्य=हठात्। मणिं=मुक्तादिरत्नम्, उद्धरेत्=बहिर्निष्कासने समर्थो भवेत्, प्रचलदूर्मिमालाकुलम् [प्रचलन्त्यश्च ता ऊर्मयश्च प्रचलदूर्मयः, तासां मालाभिराकुलम्]=चञ्चत्तरङ्गततिव्याप्तम्, समुद्रं=सागरमपि सन्तरेत्=तरीतुं शक्नुयाद्, कोपितम्=रोषवशीभूतम्, भुजङ्गमपि=अहिमपि, पुष्पवत्=कुसुम इव, शिरसि=मस्तके, धारयेत्=धारयितुं प्रभवेत्, तु=किन्तु, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम्=प्रतिनिविष्टः= दुराग्रहैर्ग्रस्तः स चासौ मूर्खजनः=मूढो नरः, तस्य चित्तम्=मानसम्, नाराधयेत्=न प्रसादयितुं प्रयतेत्। पृथ्वी छन्दः। तल्लक्षणं तु—

"जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः" इति।

भावार्थः—धनादिलोभेन वशीकृतः ग्राहमुखस्थदंष्ट्रामध्यगतं मणिमपि समुद्धर्तुं गच्छेत्, भीषणतरङ्गैश्चञ्चलं समुद्रं तर्तुं पारयेत्, कोपितं भुजङ्गमपि पुष्पमाल्यमिव शिरसि धारयेत् किन्तु दुराग्रहिणो मूर्खजनस्य चित्ताराधनाय न प्रयतेत।

भाषार्थ—मनुष्य घड़ियालके दाढ़ोंके बीचसे भी बलपूर्वक रत्नोंको निकाल ले, भीषण ऊँची-ऊँची लहरोंसे व्याप्त समुद्रको भी पार करले, छेड़ने से क्रुद्ध हुए सर्पको भी सिरपर फूलकी तरह रखले, परन्तु दुराग्रही मूर्खोंके मनको प्रसन्न करने की चेष्टा कभी न करे।

यह पृथ्वी छन्द है इसमें जगण ।S। सगण ।।S जगण ।S। सगण ।।S यगण ।SS और लघु गुरु ।S होते हैं, आठ और नौ अक्षरों पर विराम होता है ॥ ४ ॥

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादये-
न्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥५॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—बोद्धार इति । [बुध्यन्ति इति] बोद्धारः = ज्ञानिनो विद्वांसः । मत्सरेण = द्वेषेण (मत्सरोऽन्य शुभद्वेषः—इत्यमरः) ग्रस्ताः = निगीर्णाः द्वेषेणावृता॰इत्यर्थः । प्रभवः = समर्थाः राजानः धनिनो वा, स्मयेन = अहंकारेण दूषिताः = मलिनाः । अन्ये च = इतरे सामान्यजनाः अबोधेन = अज्ञानेन उपहताः = प्रताडिताः सुभाषितं = कालोपयोगि शोभनं वचनं । अङ्गे = वक्तुः मुखे एव जीर्णं = परिणतम् । अत्राऽनुष्टुप्छन्दः ।

भाषार्थ—जो सुभाषितको समझनेवाले विद्वान् हैं वे द्वेषसे भरे हैं, साधन-सम्पन्न व्यक्ति जो सुभाषितका आदर करते, घमंडमें चूर हैं और साधारण व्यक्तियोंको उसे समझनेका ज्ञान नहीं, इसीलिये ये सदुक्तियाँ (कहनेवालेके) मुखमें ही जीर्ण हो रही है ॥ २ ॥

अधूरा ज्ञान कष्टकर होता है—

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ॥३॥

अन्वयः—अज्ञः, सुखम्, आराध्यः, विशेषज्ञः, सुखतरम्, आराध्यते, ज्ञानलवदुर्विदग्धं, तं नरं, ब्रह्मापि, न रञ्जयति ।

पदार्थ—अज्ञः = न जाननेवाला (मूढ़) व्यक्ति, सुखं = आसानीसे, आराध्यः = समझाया जा सकता है । विशेषज्ञः = विशेषरूपसे जानकार (विद्वान्) व्यक्ति, सुखतरं = अत्यन्त आसानी-से । आराध्यते = संतुष्ट किया जा सकता है, ज्ञानलवदुर्विदग्धं = ज्ञानके अंश (अल्पज्ञान) से गर्वित, तं नरं = उस मनुष्यको तो, ब्रह्मापि = ब्रह्माजी भी, न रञ्जयति = नहीं प्रसन्न कर सकते ।

व्याख्या—अज्ञः [जानातीति ज्ञः, न ज्ञ इत्यज्ञः] = मूढः (मनुष्यः) सुखम् = यत्नं विनैव आराध्यः = आराधयितुं योग्यः, विशेषज्ञः [विशेषेण जानातीति] = तत्त्वज्ञानी, सुखतरम् [अतिशयितं सुखं सुखतरम्, सुखतरं यथास्यात्तथा] = अत्यन्तानायासेन, आराध्यते = अनुकूलयितुं शक्यते; (किन्तु) ज्ञानलवदुर्विदग्धम् [ज्ञानस्य लवेन = लेशेन दुर्विदग्धः = गर्वितमानसः तम्] तं नरं = तं पुरुषं, ब्रह्माऽपि = विधातापि । न रञ्जयति = न प्रसादयितुं शक्नोति । आर्या छन्दः । (तल्लक्षणं ३७ श्लोके टीकायां द्रष्टव्यम्) ।

भावार्थः—मूढो जनः सुखेन बोधयितुं शक्यः, विद्वांस्तु नितरामनायासेनैवानुकूलयितुं शक्यः, किन्तु स्वल्पेनैव ज्ञानेन गर्वितमानसं जनं ब्रह्मापि न प्रसादयितुं शक्नोति मनुष्याणां तु कथैव का ।

भाषार्थ—मूर्ख मनुष्यको शीघ्र ही प्रसन्न किया जा सकता है एवं विशेष बुद्धिमान् और भी आसानीसे अनुकूल बनाया जा सकता है । किन्तु थोड़ा-सा ज्ञान पाकर इतरानेवाले मनुष्यको तो स्वयं ब्रह्मा भी नहीं प्रसन्न कर सकते, मनुष्यकी तो बात ही क्या है ? ॥३॥

मूर्खको संतुष्ट नहीं किया जा सकता—

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्
समुद्रमपि संतरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारये-
न्नतु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥४॥

अन्वयः—मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्, मणिं, प्रसह्य, उद्धरेत्, प्रचलदूर्मिमालाकुलं समुद्रम्, अपि, संतरेत्, कोपितं, भुजङ्गम् अपि, पुष्पवत्, शिरसि, धारयेत्, तु, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं न आराधयेत्।

पदार्थ—मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्=मगरके मुखमें स्थित दाढोंके बीचसे, मणिम्=रत्नको, प्रसह्य=बलपूर्वक, उद्धरेत्=निकाल ले। प्रचलदूर्मिमालाकुलं= चंचलतरङ्गोंकी पंक्तियोंसे भीषण, समुद्रमपि संतरेत्=समुद्रको भी पार करले। कोपितं=क्रुद्ध हुए, भुजंगमपि=सर्पको भी, पुष्पवत्=फूलकी तरह, शिरसि धारयेत्=शिरमें धारण करले। तु=किन्तु, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं=हठी मूर्ख व्यक्तिके मनको। न आराधयेत्=रिझानेकी चेष्टा न करे।

व्याख्या—(मनुष्यः) मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात् [मकरस्य वक्त्रमिति मकरवक्त्रं, तस्य या दंष्ट्राः मकरवक्त्रदंष्ट्रास्तासामन्तरमिति, तस्मात्]=ग्राहमुखस्य दंष्ट्राभ्यन्तरात्। प्रसह्य=हठात्। मणिं=मुक्तादिरत्नम्, उद्धरेत्=बहिर्निष्कासने समर्थो भवेत्, प्रचलदूर्मिमालाकुलम् [प्रचलन्त्यश्च ता ऊर्मयश्च प्रचलदूर्मयः, तासां मालाभिराकुलम्]=चञ्चत्तरङ्गततिव्याप्तम्, समुद्रं=सागरमपि सन्तरेत्=तरीतुं शक्नुयाद्, कोपितम्=रोषवशीभूतम्, भुजङ्गमपि=अहिमपि, पुष्पवत्=कुसुम इव, शिरसि=मस्तके, धारयेत्=धारयितुं प्रभवेत्, तु=किन्तु, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम्=प्रतिनिविष्टः= दुराग्रहैर्ग्रस्तः स चासौ मूर्खजनः=मूढो नरः, तस्य चित्तम्=मानसम्, नाराधयेत्=न प्रसादयितुं प्रयतेत्। पृथ्वी छन्दः। तल्लक्षणं तु—

"जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः" इति।

भावार्थः—धनादिलोभेन वशीकृतः ग्राहमुखस्थदंष्ट्रामध्यंगतं मणिमपि समुद्धर्तुं गच्छेत्, भीषणतरङ्गैश्चञ्चलं समुद्रं तर्तुं पारयेत्, कोपितं भुजङ्गमपि पुष्पमाल्यमिव शिरसि धारयेत् किन्तु दुराग्रहिणो मूर्खजनस्य चित्ताराधनाय न प्रयतेत।

भाषार्थ—मनुष्य घड़ियालके दाढ़ोंके बीचसे भी बलपूर्वक रत्नोंको निकाल ले, भीषण ऊँची-ऊँची लहरोंसे व्याप्त समुद्रको भी पार करले, छेड़ने से क्रुद्ध हुए सर्पको भी सिरपर फूलकी तरह रखले, परन्तु दुराग्रही मूर्खोंके मनको प्रसन्न करने की चेष्टा कभी न करे।

यह पृथ्वी छन्द है इसमें जगण ।S। सगण ॥S जगण ।S। सगण ॥S यगण ।SS और लघु गुरु ।S होते हैं, आठ और नौ अक्षरों पर विराम होता है ॥ ४ ॥

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादये-
न्नतु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥५॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—यत्नतः, पीडयन्, सिकतासु, अपि, तैलं, लभेत, पिपासार्दितः च, मृगतृष्णिकासु, सलिलं, पिबेत्, कदाचित्, पर्यटन्, शशविषाणम्, आसादयेत्, तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं न आराधयेत्।

पदार्थ—यत्नतः=प्रयत्नसे, पीडयन्=दबाता हुआ, सिकतासु अपि=बालूके कणोंमें भी, तैलं=तेलको, लभेत=पालेवे। च=और, पिपासार्दितः=प्याससे सताया हुआ, मृगतृष्णिकासु=मृग-मरीचिकाओंमें, सलिलं पिबेत्=जल पी लेवे। कदाचित्=कभी, पर्यटन्=घूमता हुआ, शशविषाणम् अपि=खरहेके सींगको भी, आसादयेत्=पा लेवे। तु=किन्तु, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं=दुराग्रही मूर्खके चित्तको, न आराधयेत्=रिझानेकी चेष्टा न करे।

व्याख्या—मनुष्यः **सिकतासु**=बालुकास्वपि **यत्नतः**=सपरिश्रमं **पीडयन्**=मर्दयन् **तैलं**=स्नेहं **लभेत**=प्राप्नुयात्, **पिपासार्दितः**=[पिपासया=तृष्णया अर्दितः=पीडित इति] सन् **मृगतृष्णिकासु**=मृगमरीचिकासु **सलिलं**=जलं **पिबेत्**=पातुं प्रभवेत्, सः **कदाचित्**=कस्मिंश्चित् समये **पर्यटन्**=इतस्ततो भ्रमन्, **शशविषाणम्** शशस्य विषाणमिति]=शशकशृङ्गम्, **आसादयेत्**=प्राप्नुयात्, **तु**=परन्तु **प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम्**=दुराग्रहयुतमूढजनमानसं **नाराधयेत्**=न सेवेत। एतदपि **पृथ्वीवृत्तम्**।

भावार्थः—यत्नं कुर्वन् जनः सिकताकणान्मर्दयन् तेषु तैलं लब्धुं शक्नुयात्, पिपासाकुलः सन् मृगमरीचिकासु जलं संलभेत, इतस्ततः पर्यटन् कदाचित् शशशृङ्गं प्राप्नुयात् (एतदसंभवमपि संभवं कर्तुं शक्येत) किन्तु दुराग्रहिणो मूर्खस्य चित्ताराधनं कर्तुं न सुशकम्।

भाषार्थ—मनुष्य परिश्रम करके बालूसे भी तेल प्राप्त करले, प्याससे पीडित होकर किसी भाँति मृगमरीचिका (बालूमय भूमिमें जलका भ्रम कराने वाली सूर्य किरणों) में भी पानी पीने को पा जाय, कभी इधर-उधर घूमता हुआ खरगोशके सींग (जो संसारमें कभी भी प्राप्य नहीं है उसे) भी हस्तगत करले, किन्तु उसे दुराग्रही मूर्खोंके मन को प्रसन्न करने के लिये कदापि यत्न नहीं करना चाहिये क्योंकि वे कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकते ॥५॥

दुर्जनोंको सन्मार्गपर लाना कठिन है—

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणीञ्छिरीषकुसुमप्रान्तेन संनह्यते।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वाञ्छति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ॥६॥

अन्वयः—यः, सुधास्यन्दिभिः सूक्तैः, खलान्, सतां, पथि, नेतुं, वाञ्छति, असौ, बालमृणालतन्तुभिः, व्यालं, रोद्धुं, समुज्जृम्भते, शिरीषकुसुमप्रान्तेन, वज्रमणीन्, छेत्तुं संनह्यते, मधुबिन्दुना, क्षाराम्बुधेः माधुर्यं, रचयितुम्, ईहते।

पदार्थ—यः=जो व्यक्ति। सुधास्यन्दिभिः=अमृत बरसानेवाली। सूक्तैः=सुन्दर उक्तियों द्वारा। खलान्=दुर्जनोंको। सतां पथि=सज्जनोंके मार्गपर। नेतुं वाञ्छति=

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेजाना चाहता है। असौ = यह व्यक्ति (मानो) बालमृणालतन्तुभिः = कोमल कमलनालके रेसोंसे। व्यालं = बिगड़े हाथीको। रोद्धुं = रोकनेका। समुज्जृम्भते = आयास करता है। शिरीषकुसुमप्रान्तेन = कोमल शिरीसके फूलकी नोकसे। वज्रमणीन् = हीरेको। छेत्तुं = काटनेको। संनह्यते = उद्यत है। मधुबिन्दुना = शहदकी बूंदसे। क्षाराम्बुधेः = क्षारसमुद्रको। माधुर्यं रचयितुं = मीठा बनाना। ईहते = चाहता है।

व्याख्या—यः = पुरुषः [सुधां स्यन्दन्ते तच्छीलानि सुधास्यन्दीनि, तैः] **सुधास्यन्दिभिः** = पीयूषस्राविभिः **सूक्तैः** = सुभाषितैः **खलान्** = दुष्टान्, **सतां** = सज्जनानां, **पथि** = मार्गे **नेतुम्** = प्रापयितुं **वाञ्छति** = कामयते **असौ** = एषः **बालमृणालतन्तुभिः** = बालस्य = अतिसुकुमारस्य मृणालस्य = बिसस्य तन्तवः = सूक्ष्मसूत्राणि तैः, **व्यालम्** = दुष्टगजं—(व्यालो दुष्टगजे सर्पे इति मेदिनी कोशः) **रोद्धुम्** = बद्धुम **समुज्जृम्भते** = समीहते, **शिरीषकुसुमस्य** = शिरीषाभिधस्य पुष्पस्य **प्रान्तेन** = अग्रभागेन **वज्रमणिम्** = हीरकं **छेत्तुम्** = भेत्तुम्, **सन्नह्यते** = सम्यग् यतते, **मधुबिन्दुना** = मधुनः = माक्षिकस्य बिन्दुः = लेश इति तेन, **क्षाराम्बुधेः** = क्षारश्चासावम्बुधिश्चेति तस्य लवणाकरस्य **माधुर्यम्** = मधुरस्य भावस्तदिति-मधुरतां **रचयितुम्** = सम्पादयितुम्, **ईहते** = चेष्टते। **शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्**। तल्लक्षणं तु—

"सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्"

भावार्थः—अमृतमधुराभिः सदुक्तिभिः यः दुर्जनान् सज्जनान् कर्तुं चेष्टते स जनः मन्ये कोमलकमलतन्तुभिः दुष्टगजं वशीकर्तुं प्रयत्नं करोति। यद्वा शिरीषकुसुमाग्रेण हीरकं छेत्तुं प्रयतते यद्वा माक्षिकबिन्दुना क्षारसमुद्रं मधुरं कर्तुं वाञ्छति। असम्भवमेतत्सर्वमित्यभिप्रायः।

भाषार्थ—जो मनुष्य सरल सूक्तियोंसे किसी दुर्जनको सन्मार्ग पर लाना चाहता है, उसका यह प्रयत्न वैसा ही है जैसे कोई अत्यन्त पतले पतले कमल नालके तागोंसे मतवाले हाथीको बाँधनेकी चेष्टा करे, शिरीषकी कोमल नोकसे हीरे को काटने चले तथा एक बूँद मधुसे खारे समुद्रको मधुर बनानेकी अभिलाषा करे। [अर्थात् जैसे बिसतन्तु आदिसे दुष्टगज का बाँधना आदि असम्भव है वैसे ही दुष्टोंको भी मधुर रसभरी वाणी से सन्मार्गपर लाना असम्भव है]

यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इसमें १२ और ७ अक्षरों पर विराम होता है तथा म SSS स ।।S ज ।S। स ।।S त SS। त SS। और गुरु S ये गण होते हैं। ॥६॥

मूर्खोंके लिये मौन रहना श्रेयस्कर है—

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः, सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥७॥

अन्वयः—विधात्रा स्वायत्तम् एकान्तगुणं, अज्ञतायाः छादनं, विशेषतः सर्वविदां, समाजे, अपण्डितानाम्, विभूषणं मौनं विनिर्मितम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पदार्थ—विधात्रा = ब्रह्माजीने, स्वायत्तं = स्वाधीन, एकान्तगुणं = अत्यन्तगुणकारी, अज्ञतायाः छादनं = मूर्खताको ढकनेवाला, विशेषतः = विशेष करके, सर्वविदां समाजे = विद्वानोंके समाजमें, अपण्डितानां = मूर्खोंके लिये, विभूषणं = आभूषण जैसा, मौनं = मौन (चुपरहना), विनिर्मितम् = बनाया है ।

व्याख्या—**विधात्रा** = ब्रह्मणा, **अपण्डितानाम्** = [न पण्डिताः अपण्डिताः = मूर्खास्तेषाम्], **स्वायत्तम्** = स्वस्यात्मन आयत्तमधीनमिति, **एकान्तगुणम्** [एकान्तं गुणो यत्र तत्] = अमोघम् , **मौनम्** [मुनेर्भावो मौनमिति]=तूष्णीभावम् , **अज्ञताया** = मूढतायाः, **छादनम्** = आवरकम् , **विनिर्मितम्** = विरचितम् , यद् **विशेषतः** = विशेषरूपेण **सर्वविदाम्** [सर्वं विदन्तीति सर्वविदस्तेषाम्]=सर्वज्ञानां जनानां **समाजे** = समूहे **विभूषणम्** = विशेषालङ्करणम् , विनिमितम् = रचितम् । अत्रोपजातिर्वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा–'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।' इति । अत्र च इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरुपजातिः ।

भावार्थः—स्वाधीनममोघं जाड्यस्यावरणं विशेषेण विदुषां समूहे मूर्खाणामलंकरणं मौनमेव विधात्रा विरचितम् ।

भाषार्थ—ब्रह्माजीने, सदा अपने पासमें रहनेवाला, अत्यन्त गुणकारी (कभी असफल न होनेवाला), मूर्खताको ढकनेवाला, विशेषकर विद्वानोंके समाजमें मूर्खोंको भी सुशोभित करने वाला गुण "मौन" (चुप रहना) को बनाया है ।

यह उपजाति छन्द है इसमें एक चरण इन्द्रवज्राका तथा एक उपेन्द्रवज्राका मिश्रित है, इन्द्रवज्रामें त SSI त SSI ज ISI और दो गुरु SS होते हैं और यही पादकी प्रथम मात्रा लघु हो जानेपर उपेन्द्रवज्रा हो जाती है । दो छन्दों का जहाँ एक ही पद्यमें मिश्रण हो उसे उपजाति कहते हैं ।। ७ ।।

विद्वानोंके संगसे वास्तविकताका ज्ञान–

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ।। ८ ।।

अन्वयः—यदा, अहं, किंचिज्ज्ञः, द्विप इव, मदान्धः, समभवं, तदा, सर्वज्ञः अस्मि, इति, मम मनः अवलिप्तम्, अभवत्, यदा बुधजनसकाशात्, किंचित् किंचित् अवगतं, तदा, अहं मूर्खः, अस्मि, इति, मे मदः, इव, व्यपगतः ।

पदार्थ—यदा = जब, अहं = मैं, किंचिज्ज्ञः = अल्पज्ञ था (तो), द्विप इव = हाथीकी तरह, मदान्धः = मदसे अंधा, समभवं = हो गया था । तदा = तब, 'सर्वज्ञः अस्मि' = 'मैं ही सब कुछ जाननेवाला हूँ', इति = इस प्रकार, मम मनः = मेरा चित्त, अवलिप्तम् = गर्वसे युक्त, अभवत् = हो गया (किन्तु) यदा = जब, किंचित् किंचित् = कुछ कुछ, बुधजनसका-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
शात्=विद्वानोंके संसर्गसे, अवगतं=सीखा, तदा=तब, "मूर्खोऽस्मि"=मैं तो मूर्ख हूँ, इति=ऐसा, ज्वर इव=ज्वरकी तरह, मे मदः=मेरा घमंड, व्यपगतः=शान्त हो गया।

व्याख्या—यदा=यस्मिन् समये किञ्चिज्ज्ञः [किञ्चित् जानातीति]=अल्पज्ञ,, अहं=द्विपः=हस्तीव मदान्धः=उन्मत्तः समभवम्=सञ्जातः, तदा=तस्मिन्काले सर्वज्ञः [सर्वं जानातीति]=सकलवस्तुज्ञाता अस्मि इति=एवम्, मम=मे मनः=स्वान्तम् अवलिप्तम्=सगर्वम्, अभवत्=अजायत। यदा (मया) बुधजनानां=विदुषां सकाशात्=समीपात् विद्वद्भिः सह समागमात् इत्यर्थः। किञ्चित् किञ्चित्=अल्पमल्पम्, अवगतम्=वस्तुतत्त्वं ज्ञातम्, तदा मूर्खोऽस्मि=अहमतीव जड इति एवं प्रकारेण मे=मम, मदः=स्मयः, ज्वर इव=व्याधिरिव व्यपगतः=दूरङ्गतः। शिखरिणी वृत्तम्। (तल्लक्षणम् २८ श्लोके टीकायाम् द्र०)

भावार्थः—यदाहमल्पज्ञ आसम् तदा मदेनोन्मत्तगज इवाहंकारेणाहमेव सर्वज्ञ इत्यविचारयम्, किन्तु यदा विद्वत्सङ्गान्मया किंचित् शिक्षितुमारब्धं तदा मया ज्ञातं यदहं तु मूर्खोऽस्मि इति, एवं ज्वर इव ममाहंकारो विनष्टः।

भाषार्थ—जब मुझे (शास्त्रों) का थोड़ा सा ज्ञान था तब मदसे उन्मत्त हाथीकी भाँति मैं अहंकारमें झूमने लगा और मनमें सोचता था कि मैं तो सर्वज्ञ हूँ। परन्तु मैंने विद्वानोंके बीच रहकर कुछ-कुछ सीखना आरम्भ किया तब यह बात समझ में आई कि मैं तो मूर्ख हूँ और फिर मेरा सम्पूर्ण अहंकार ज्वरकी तरह समाप्त हो गया॥ ८॥

नीचकी नीचता—

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जुगुप्सितं
निरुपमरसप्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम्।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य विशङ्कते
नहि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम्॥ ९॥

अन्वयः—कृमिकुलचितं, लालाक्लिन्नं, विगन्धि, जुगुप्सितं, निरामिषं, नरास्थि, निरुपमरसप्रीत्या, खादन्, श्वा, पार्श्वस्थं, सुरपतिम्, अपि, विलोक्य, विशङ्कते, हि क्षुद्रो, जन्तुः परिग्रहफल्गुतां, न, गणयति।

पदार्थ—कृमिकुलचितं=कीड़ोंके झुण्डसे भरे हुए। लालाक्लिन्नं=मुखकी लारसे गीले। विगन्धि=दुर्गन्धवाले। जुगुप्सितं=घिनौने, निरामिषं=मांसरहित। नरास्थि=मानवकी हड्डीको। निरुपमरसप्रीत्या=अत्यन्त स्वाद युक्तकी भाँति, खादन्=खाता हुआ। श्वा=कुत्ता। पार्श्वस्थं=समीपवर्ती। सुरपतिमपि=इन्द्रको भी। विलोक्य=देखकर। विशङ्कते=शङ्का करने लगता है।

व्याख्या—श्वा=कुक्कुरः। कृमिकुलचितम्-कृमिकुलेन=कीटसमूहेन चितं=व्याप्तमिति, लाला=मुखस्यन्दिजलम्, तया क्लिन्नम्=आर्द्रम्, विगन्धि [विकृतो विगतः
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

वा गन्धोऽस्यास्तीति]=दुर्गन्धयुक्तमिति यावत्, जुगुप्सितम्=घृणास्पदम्, निरामिषम् [निर्गतमामिषं यस्मात्तत्]=मांसरहितम्, नरास्थि [नरस्य अस्थि]=मानुषकीकसं, निरुपमरसप्रीत्या [निरुपमो रसः यस्य तत्, तस्मिन् या प्रीतिः तया] अतुलनीयस्वादस्नेहेन, खादन्=भक्षयन्, पार्श्वस्थम्=समीपस्थम् सुरपतिम् [सुराणां=देवानां पतिः=स्वामी तम्] इन्द्रमित्यर्थः, विलोक्य=दृष्ट्वा विशङ्कते=शङ्कां करोति, हि=यतः क्षुद्रः=नीचः जन्तुः=जीवः परिग्रहफल्गुताम्=[परिग्रहस्य फल्गुताम्] स्वीकृतस्य पदार्थस्यासारतां न गणयति=न विभावयति। हरिणीवृत्तम् तल्लक्षणं यथा—

"रसयुगहयैर्न्सौम्रौस्लौ गो यदा हरिणी तदा"

भावार्थः—कीटपूर्णं, लालार्द्रं, पूतिगन्धि, नीरसं, निर्मांसं च मानुषकीकसं सरसवस्तुप्रीत्या खादन् कुक्कुरः देवराजमपि समीपे दृष्ट्वा 'कदाचिदयं मद्भोज्यं न गृह्णीयात्' इति शङ्कते, यतो हि नीचो जनः गृहीतवस्तुनोऽसारतां नानुमन्यते।

भाषार्थ—कुत्ता कीड़ोंसे भरी हुई, लारसे सराबोर, दुर्गन्धपूर्ण, घृणास्पद और मांससे शून्य मनुष्यकी हड्डीको बड़े प्रेमसे खाता हुआ अपने पासमें खड़े हुए देवोंके राजा इन्द्रसे भी शंका करता है कि कहीं यह मेरे भोज्य पदार्थको छीन न ले। क्योंकि क्षुद्र प्राणी अपनी वस्तुओंकी निःसारता पर रञ्च मात्र भी ध्यान नहीं देते हैं।

यह हरिणी छन्द है इसमें ६, ४ और ७ अक्षरों पर विराम होता है तथा न ।।। स ।।ऽ म ऽऽऽ र ऽ।ऽ स ।।ऽ लघुगुरु ।ऽ ये गण होते हैं ॥ ९ ॥

विवेकहीनोंका पतन—

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥ १० ॥

अन्वयः—इयं, गंगा, स्वर्गात्, शार्वं, शिरः, पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं, उत्तुङ्गात् महीध्रात् अवनिं, अवनेश्चापि, जलधिम्, अधोऽधः स्तोकं, पदम्, उपगता, अथवा, विवेकभ्रष्टानां, शतमुखः, विनिपातः, भवति।

पदार्थ—इयं गङ्गा=यह गंगा। स्वर्गात्=स्वर्गसे। शार्वशिरः=शिवजीके शिरपर। पशुपतिशिरस्तः=शिवजीके शिरसे। क्षितिधरं=पर्वतपर। उत्तुङ्गात्=ऊँचे, महीध्रात्=पर्वतसे। अवनिं=पृथ्वीपर। च=और। अवनेः=पृथ्वीसे भी। जलधिम्=समुद्रमें। इस प्रकार, अधोऽधः=नीचे नीचे। स्तोकं पदं=तुच्छ पदको। उपगता=प्राप्त हुई। अथवा=क्यों कि। विवेकभ्रष्टानां=जिनको अच्छे-बुरेका ज्ञान नहीं रह गया, उनका। विनिपातः=पतन। शतमुखः=सैकड़ों प्रकारसे। भवति=होता है।

व्याख्या—इयम् प्रसिद्धा गङ्गा=भागीरथी, स्वर्गात्=देवलोकात्, शार्वम् [शर्वस्य

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदम्]=भगवच्छङ्करसम्बन्धि इति यावत्, **शिरः**=मस्तकम् **उपगता**=प्राप्ता, **पशुपतिशिरस्तः** [पशूनां पतिरिति पशुपतिः, शिवस्तस्य शिरसः इति]=शिवमस्तकात्, **क्षितिधरम्**=[धरतीति धरः क्षितेः धरः इति] हिमालयपर्वतस्तम्। पुनः **उत्तुङ्गात्**=अत्युच्चैः **महीध्रात्**=पर्वतात् हिमालयादितिभावः **अवनिम्**=पृथ्वीतलम् **उपगता** पुनरवनेः=पृथिव्या **जलधिम्**=सागरम् एवं **अधोऽधः**=नीचैर्नीचैः=**स्तोकम्** तुच्छम्, **पदम्**=स्थानम्, **उपगता**=प्राप्ता। **अथवा**=यतो हि **विवेकभ्रष्टानां** [विवेकाद् भ्रष्टाः, तेषां]=सदसज्ज्ञानरहितानां **विनिपातः**=पतनं **शतमुखः** [शतं मुखानि यस्य सः]=बहुविधः **भवति**। **शिखरिणी** वृत्तम्।

भावार्थः—भगवती गङ्गा स्वर्गात् शिवशिरसि, ततः हिमाद्रौ, ततो धरण्यां ततोऽपि जलनिधिं गच्छन्ती क्रमेण अधस्तादेवोपगता। यतो हि विवेकभ्रष्टा उन्नतेभ्यः पदेभ्यः क्रमशो बहुप्रकारेण पतन्त्येव।

भाषार्थ—गङ्गा स्वर्गसे शिवजीके सिरपर, वहाँसे हिमालय पर्वतपर, फिर वहाँसे अत्यन्त नीचे इस भूतलपर और इस धरातलसे भी समुद्रमें गिर पड़ी। इस प्रकार उसका क्रमशः पतन ही होता गया। यह उचित ही है कि अविवेकी जनोंकी सैकड़ों प्रकारसे अवनति ही होती जाती है॥ १०॥

मूर्खताका कोई परिहार नहीं होता—

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक्; छत्रेण सूर्यातपो,
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो, दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं,
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं, मूर्खस्य नास्त्यौषधम्॥ ११॥

अन्वयः—हुतभुक्, जलेन, वारयितुं शक्यः, सूर्यातपः, छत्रेण, समदः, नागेन्द्रः, निशिताङ्कुशेन, गोगर्दभौ, दण्डेन, व्याधिः, भेषजसङ्ग्रहैः, विषं, विविधैः, मंत्रप्रयोगैः (वारयितुं शक्यं), सर्वस्य, शास्त्रविहितम्, औषधम्, अस्ति, (किन्तु) मूर्खस्य, औषधं नास्ति।

पदार्थ—हुतभुक्=अग्निः। जलेन=जलसे। वारयितुं शक्यः=रोका जासकता है। सूर्यातपः=सूर्यके आतप (गर्मी धूप) को। छत्रेण=छातेसे। समदो नागेन्द्रः=उन्मत्त हाथीको। निशिताङ्कुशेन=तीक्ष्ण अंकुशसे। गोगर्दभौ=सांड़ और गधेको। दण्डेन=डण्डेसे। व्याधिः=रोगको। भेषजसङ्ग्रहैः=औषधोंके समूहसे। (और) विषं=विषको। विविधैः=विभिन्न। मन्त्रप्रयोगैः=मन्त्रोंके प्रयोगसे (वारयितुं शक्यं=रोका जासकता है)। सर्वस्य=सभीको। शास्त्रविहितं=शास्त्रोक्त। औषधम् अस्ति=औषध है। (किन्तु) मूर्खस्य=मूर्खकी। औषधं नास्ति=औषध नहीं है।

व्याख्या—**हुतभुक्** [हुतं=हवनीयद्रव्यं भुनक्ति=खादतीति]=वह्निः। **जलेन**=पानीयेन **वारयितुम्**=उपशमयितुम् **शक्यः**=योग्यः, **सूर्यातपः** [सूर्यस्य=दिवाकरस्य आतपः]=घर्मः, **छत्रेण**=आतपत्रेण वारयितुम्=निराकर्तुं=शक्यः, **समदः** [मदेन

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सहित इति]=दानजलसहितः **नागेन्द्रः**=गजश्रेष्ठः **निशिताङ्कुशेन** [निशितश्चासौ अंकुशः तेन]=तीक्ष्णेन सृणिना, वारयितुम्-अवरोद्धुम्, शक्यः, **गोगर्दभौ** [गौश्च गर्दभश्चेति]=वृषभरासभौ, **दण्डेन**=लगुडेन, वारयितुम्=दमयितुम्, शक्याविति वचनविपरिणामेन। **व्याधिः**=शरीरगतो ज्वरादिरोगः, **भेषजसंग्रहैः**=भेषजानाम्=औषधीनाम्, संग्रहैः=एकत्रीकरणं विधाय तत्सेवनेनेति भावः। वारयितुम्=नाशयितुम्, शक्यः, **विषम्**=गरलमपि **विविधैः**=अनेकप्रकारैः **मन्त्रप्रयोगैः** [मन्त्राणां प्रयोगास्तैः]=विषोत्तारकमन्त्राणाम् अनुष्ठानैः, वारयितुम्=दूरीकर्तुं शक्यम्, ('श्रा, जातावेकवचनमिदमित्यवधेयम्) एवं **सर्वेषामपि**=वस्तूनां, **शास्त्रविहितम्**=आयुर्वेदादिग्रन्थेषु निगदितम्, **औषधम्**=दूरीकरणोपायो विद्यते, परन्तु **मूर्खस्य**=विवेकशून्यस्य जनस्य **कृते किमपि** औषधम्=जाड्यादिनिवारणोपायः **नास्ति**=न वर्तते। **शार्दूलविक्रीडितं** वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

भावार्थः—अग्नेः सूर्यातपस्य, दुष्टगजगोगर्दभादीनां, रोगाणां विषादीनां च प्रशमनोपायाः शास्त्रेषूपलभ्यन्ते किन्तु मूर्खस्य मूर्खत्वनाशकमौषधं न क्वापि श्रूयते।

भाषार्थ—कहीं आग लगनेपर उसे पानीसे बुझाया जा सकता है, सूर्यकी तीव्र धूपको छातेसे रोका जा सकता है, मतवाले गजराजको भी अङ्कुशसे वशमें किया जासकता है, चञ्चल साँड़ और गदहे को भी लाठीके प्रहारसे शान्त किया जासकता है, भयङ्कर रोग भी उचित दवासे दूर किया जासकता है, सर्पादिके घोर विषको मन्त्र-तन्त्र आदि प्रयोगों द्वारा उतारा जासकता है। इस प्रकार इस संसारमें सभी उपद्रवोंको दूर करनेके शास्त्रोक्त साधन हैं किन्तु मूर्खको उचित मार्ग पर लानेको किसी भी शास्त्रमें कोई औषधि नहीं लिखी है।

यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है इसमें १२ और ७ अक्षरोंपर विराम होता है तथा म SSS स ।।S ज ।S। स ।।S दो त SS। तथा गुरु S ये गण होते हैं ॥ ११ ॥

मनुष्यरूपमें पशु—

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः (जनः), साक्षात्, पुच्छविषाणहीनः, पशुः, (स यत्) तृणं, न खादन्, अपि, जीवमानः, तद् पशूनां परमं भागधेयम्।

पदार्थ—साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः=साहित्य और सङ्गीतकी कलासे रहित व्यक्ति। साक्षात्=प्रत्यक्ष ही। पुच्छविषाणहीनः पशुः=पूंछ और सींगसे रहित पशु है। (वह जो) तृणं न खादन् अपि=घास न खाता हुआ भी। जीवमानः=जीरहा है। तद्=वह (उसका जीना)। पशूनां=पशुओंके लिये। परमं भागधेयं=अत्यन्त भाग्यकी बात है।

व्याख्या—[हितेन सह सहितम्, सहितस्य भावः साहित्यम्, सम्यग्गीतं संगीतं, कलयतीति कला इति, साहित्यसंगीतयोः कलास्ताभिर्विहीनम्] साहित्यं=...प्रयोजकं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
काव्यादिकं **संगीतं**=नृत्यगीतवाद्यस्वरूपं तयोः **कला:**=चातुर्याणि, **ताभिर्विहीनः**=विरहितः जनः, **पुच्छविषाणहीनः** [पुच्छश्च विषाणौ चेति पुच्छविषाणाः, तैः हीनः] पुच्छेन=लाङ्गूलेन, विषाणाभ्यां=शृङ्गाभ्यां च हीनः=रहितः, **साक्षात्**=मूर्तिमान् सर्वथैवेति भावः, पशुरस्ति। अयं मूढः पुरुषः **तृणं**=घासादिकं **न खादन्नपि**=अमक्षयन्नपि (यत्) **जीवमानः**=जीवनशीलो भवति, तत् **पशूनां**=वास्तविकगवादिपशूनां, **परमं**=महत्, **भागधेयं**=सौभाग्यमस्ति। **उपजातिवृत्तम्**।

भावार्थः—यः पुमान् शास्त्रविदपि साहित्यसङ्गीतचातुरीं न जानाति स शृङ्गपुच्छविहीनः पशुरेव जनैः मन्यते। तृणभक्षणाभावस्तु तस्य पशूनां सौभाग्येन भवति।

भाषार्थ—साहित्य (काव्यादि) तथा संगीत (नृत्यगीत आदि) की, कलासे शून्य मनुष्य, पूँछ और सींग रहित साक्षात् पशु ही होता है। वह बिना घास खाये भी जो जीवित रहता है यह वास्तविक गाय बैल इत्यादि पशुओंका बहुत सौभाग्य है। (क्योंकि यदि मूर्ख मनुष्यरूपी पशु भी घास खाना प्रारम्भ कर दगे तो प्रकृत पशुओंके लिये घास बचेगी नहीं। अतः पशुओंका भाग्य अच्छा है कि य घास नहीं खावे) ॥ १२ ॥

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ १३ ॥

अन्वयः—येषां, विद्या न, तपो न, दानं न, ज्ञानं न, शीलं न, गुणो न, धर्मः न, ते मर्त्यलोके, भुवि, भारभूताः (सन्तः), मनुष्यरूपेण, मृगाः, चरन्ति।

पदार्थ—येषां=जिनके (पास)। विद्या न=शास्त्रोंका ज्ञान नहीं है। तपो न=तपस्या नहीं है। दानं न=दान नहीं है (जो दान नहीं करते हैं)। ज्ञानं न=विवेक नहीं हैं। शीलं न=शील (स्वभाव) अच्छा नहीं है। गुणो न=(दयादाक्षिण्य आदि) गुण नहीं हैं। धर्मः न=धर्म नहीं है। ते=वे व्यक्ति। मर्त्यलोके भुवि=मृत्युलोककी भूमिपर, भारभूताः (सन्तः)=भारस्वरूप होकर। मनुष्यरूपेण=मनुष्यके रूपमें। मृगाः=पशु। चरन्ति—विचरण करते हैं।

व्याख्या—येषां=मानवानां, **विद्या**=व्याकरणसाहित्यप्रभृतिशास्त्राणां ज्ञानम्, **न**=नास्ति, **तपः**=व्रतोपवासादिकम्, **न**—नास्ति, **दानम्**=धान्यादीनां ब्राह्मणादिभ्यः समर्पणम्, **न**=नास्ति, **ज्ञानम्**=हिताहितविवेकः **न**=नास्ति, **शीलः**=सदाचारः, **न**=न वर्तते, **गुणः**=दयादाक्षिण्यादिरूपो धर्मविशेषः, **न**=नास्ति, **धर्मः**=वेदविहितं कर्म, **न**=नास्ति, ते=जनाः, **मर्त्यलोके** [मर्त्यानां लोकः तस्मिन्]=मानवलोके, **भुवि**=वसुधायाम्, **भारभूताः**=भारस्वरूपाः **मनुष्यरूपेण** (मनुष्याणां रूपं तेन)=मानवस्वरूपेण, **मृगाः**=पशवः, **चरन्ति**=इतस्ततो व्रजन्ति। **उपजातिवृत्तम्**। तल्लक्षणं **यथा**—
"अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥"

भावार्थ—विद्यातपोदानादिविहीनानां मानुषाणां जन्म जगति निरर्थकमेव।
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भाषार्थ—जिन मनुष्योंमें विद्या (व्याकरण आदिका ज्ञान), तपस्या (कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रतोंको करना), दान, ज्ञान, सदाचार, गुण (दया दाक्षिण्य आदि) एवं धर्म भावना (वेदके अनुसार चलना) नहीं है वे इस मरणशील संसारमें भार (बोझ) स्वरूप ही हैं जो पशुकी भाँति व्यर्थ घूमा करते हैं।

यह उपजाति छन्द है। दो एक ही जातिके छन्दोंके चरण जिसमें मिल जायें वह उपजाति होता है। यहाँ तीन चरण इन्द्रवज्राके और चतुर्थ उपेन्द्रवज्राका है। इन्द्रवज्रामें त SSI त SSI ज ISI और दो गुरु SS होते हैं; उपेन्द्रवज्रामें इसीकी प्रथम मात्रा ह्रस्व हो जाती है ॥१३॥

मूर्खोंका संसर्ग त्याज्य है—

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्खजनसंपर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥१४॥

अन्वयः—वनचरैः, सह, पर्वतदुर्गेषु, भ्रान्तं, वरं, सुरेन्द्रभवनेषु, अपि, मूर्खजनसंपर्कः, न (वरम्)।

पदार्थ—वनचरैः सह=वनचरों (जंगली कोलभीलों) के साथ। पर्वतदुर्गेषु=पहाड़ोंके दुर्गम स्थानोंमें। भ्रान्तं वरम्=घूमना अच्छा। (किन्तु) सुरेन्द्रभवनेषु अपि=इन्द्रके भवनोंमें भी। मूर्खजनसंपर्कः=मूर्खव्यक्तिसे संसर्ग होना। न (वरम्)=अच्छा नहीं।

व्याख्या—पर्वतदुर्गेषु=पर्वताः=गिरयः, दुर्गाणि=दुर्गमस्थानानि च, तेषु, वनचरैः [वने चरन्तीति वनचरास्तैः]=अरण्यनिवासिभिः जनैः, सह=सार्धम्, भ्रान्तम्=भ्रमणम्, वरम्=किञ्चित् श्रेष्ठम्, (किन्तु) सुरेन्द्रभवनेषु=[सुराणामिन्द्रः सुरेन्द्रस्तस्य भवनानि, तेषु] देवेन्द्रप्रासादेषु, अपि मूर्खजनसम्पर्कः [मूर्खजनानां सम्पर्कः]=दुष्टजनसंसर्गः, न वरमिति तात्पर्यम्। अनुष्टुब्वृत्तम्।

भावार्थः—वनेषु दुर्गमेषु वा स्थानेषु वनचरैः सह वासो यथाकथञ्चिच्छोभनः परं मूर्खैः सह वासस्तु स्वर्गेऽप्युपलभ्येत चेत्त्याज्य एव।

भाषार्थ—जंगलोंमें इधर-उधर घूमने वाले कोल, भील आदिके साथ पहाड़ोंके बीच दुर्गम स्थानोंमें भी मारे-मारे फिरना कहीं अच्छा है, किन्तु महामूर्खोंके साथ इन्द्रके राजमहलमें भी रहना कल्याणप्रद नहीं है ॥ १४ ॥

विद्वानोंका अनादर राजाकी मूर्खताका द्योतक है—

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमाः
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः ।
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य, कवयो ह्यर्थं विनापीश्वराः
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः ॥ १५ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः, शिष्यप्रदेयागमाः, विख्याताः, कवयः, यस्य, प्रभोः, विषये, निर्धनाः, वसन्ति, तत्, वसुधाधिपस्य, जाड्यं, हि, कवयः, अर्थं, विनापि, ईश्वराः (भवन्ति), हि, कुपरीक्षकाः, कुत्स्याः, स्युः, यैः, मणयः, अर्घतः, पातिताः।

पदार्थ—शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः=शास्त्रों (व्याकरणादि) से परिष्कृत शब्दोंवाली (अतएव) सुन्दर है वाणी जिनकी, ऐसे। शिष्यप्रदेयागमाः=शिष्योंको देने योग्य है आगम (शास्त्रोंके रहस्य) जिनके, ऐसे। विख्याताः=प्रसिद्ध। कवयः=विद्वान् लोग। यस्य प्रभोः=जिस राजाके। विषये=देशमें। निर्धनाः=दरिद्र होकर। वसन्ति=रहते हैं। तत्=वह (उनका निर्धन होकर रहना)। वसुधाधिपस्य=उस राजाकी। जाड्यं=मूर्खता है कवयो हि=विद्वान् लोग तो। अर्थं विनापि=धनके विना भी। ईश्वराः=समर्थ हैं। हि=क्योंकि। कुपरीक्षकाः=अनुचित परीक्षण करनेवाले (वे व्यक्ति)। कुत्स्याः स्युः=निन्दनीय हैं। यैः=जिन्होंने। मणयः=रत्नोंको। अर्घतः=मूल्यसे। पातिताः=गिराया है।

व्याख्या—शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः—शास्त्रैः=न्यायव्याकरणादिभिः, उपस्कृताः=परिष्कृताश्च ते शब्दाः, तैः सुन्दर्यो=मनोहारिण्यः, गिरो=वचनानि येषां ते, तादृशाः। शिष्यप्रदेयागमाः—शिष्येभ्यः=छात्रेभ्यः, प्रदेयाः [प्रदातुं योग्याः]=दातव्याः शिक्षयितुं योग्या वा आगमाः=काव्यालङ्कारादिशास्त्राणि येषां ते, तथाभूताः। विख्याताः [विशेषेण ख्याताः]=प्रसिद्धाः, कवयः=काव्यकर्मकुशलाः पण्डिताः, यस्य प्रभोः=नृपस्य, विषये=राष्ट्रे, निर्धनाः [निर्गतं धनं येषां ते]=दरिद्राः सन्तः वसन्ति=निवासं कुर्वन्ति, तत्, (तस्य) वसुधाधिपस्य [वसुधाया अधिपः वसुधाधिपस्तस्य)=भूपतेः एव जाड्यम् [जडस्य भावः]=मूर्खता-अस्ति, कवयस्तु अर्थम्=धनं, विना=अन्तरेणापि, ईश्वराः=समर्थाः (भवन्ति)। हि=यतः कुपरीक्षकाः [कुत्सिताः परीक्षकाः] गुणदोषयोः औचित्यपरीक्षां कर्तुमसमर्थाः पुरुषाः, कुत्स्याः=निन्द्याः स्युः=भवेयुः, यैः=कुपरीक्षकैः, मणयः=बहुमूल्यानि रत्नानि, अर्घतः=मूल्यात्, पातिताः=न्यूनतां नीताः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् [लक्षणं ११ श्लोकव्याख्यायां द्र०]।

भावार्थः—सुप्रसिद्धाः विद्वांसः यदि निर्धनाः सन्ति चेत् तत्तस्य राज्ञो मूढत्वं यस्य राज्ये ते निवसन्ति, यथा बहुमूल्यानि रत्नानि यदि अल्पज्ञपरीक्षकैरल्पमूल्यानि कृतानि चेत् तत्परीक्षका एव निन्द्या न तु तेन रत्नानां महत्त्वे किमपि न्यूनत्वमायाति।

भाषार्थ—जिनकी वाणी शास्त्रों (व्याकरण आदि) द्वारा परिष्कृत शब्दोंसे सुन्दर है और जो शिष्योंको नाना शास्त्रोंकी शिक्षा देते हैं, ऐसे सुकवि जिस देशमें निर्धन रहते हैं; इससे वहाँके राजाकी ही मूर्खता सिद्ध होती है। क्योंकि विद्वान् कवि तो धनके विना भी पूज्य होते हैं। वे मूर्ख परीक्षक ही निन्दनीय हैं जिन्होंने महार्घ रत्नोंका उचित मूल्य नहीं आँका, इससे रत्नोंकी महत्तामें कमी नहीं आती, वे तो बहुमूल्य ही रहते हैं॥ १५॥

विद्वानोंका आदर करना चाहिये—

हर्तुर्याति न गोचरं, किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा-
प्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्धते ॥१६॥

अन्वयः—यत्, हर्तुः, गोचरं, न याति, सर्वदा, किमपि, शं, पुष्णाति, अनिशं, प्रतिपाद्यमानम्, अपि, परां, वृद्धिं, प्राप्नोति, कल्पान्तेषु, अपि, निधनं, न प्रयाति, (एतादृशं) विद्याख्यम्, अन्तर्धनं, येषाम् (अस्ति), तान् प्रति, हे नृपाः, मानम्, उज्झत। तैः, सह, कः, स्पर्धते।

पदार्थ—यत्=जो। हर्तुः=चुरानेवालेके। गोचरं न याति=सामने नहीं आता। सर्वदा=नित्य। किमपि शं=किसी (अवर्णनीय) कल्याणको। पुष्णाति=बढ़ाता है। अर्थिभ्यः=याचकोंके लिये। अनिशं=निरन्तर। प्रतिपाद्यमानम् अपि=दिया जाता हुआ भी। परां वृद्धिं=अत्यन्त वृद्धिको। प्राप्नोति=प्राप्त होता है। कल्पान्तेषु अपि=प्रलयकालमें भी। निधनं=नाशको। न प्रयाति=नहीं प्राप्त होता। (ऐसा) विद्याख्यं=विद्यानामक। अन्तर्धनं=गुप्त धन। येषां=जिनके पास है। तान् प्रति=उनके प्रति। नृपाः=हे राजाओ! मानम् उज्झत=गर्व करना छोड़ दो। तैः सह=उन व्यक्तियोंके साथ। कः स्पर्धते=कौन स्पर्धा (बराबरीका डाह) कर सकता है।

व्याख्या—**नृपाः**=भूपाः! **यत्**=धनं, **हर्तुः**=चोरयितुः पुरुषस्य **गोचरं न याति**=नेत्रविषयं न भवति, **यत् सर्वदा**=सदा, **किमपि**=अकथनीयम्, **शम्**=कल्याणं शुभं वा **पुष्णाति**=वर्धयति, **अर्थिभ्यः**=याचकेभ्यश्च्छात्रेभ्य इति यावत्, **अनिशं**=निरन्तरं, **प्रतिपाद्यमानमपि**=दीयमानमपि, **परम्**=सुमहतीम्, **वृद्धिं**=उन्नतिम् **प्राप्नोति**=लभते, [तथा) **कल्पान्तेष्वपि** [कल्पानाम् अन्ताः कल्पान्तास्तेषु]=प्रलयवेलायामपीत्यर्थः, **निधनं**=नाशम्, **न प्रयाति**=न एति, **तद् विद्याख्यम्** [विद्या आख्या यस्य तद्]=विद्याऽभिधेयम्, **अन्तर्धनम्**=गुप्तं वित्तम्, **येषाम्**=विदुषाम्, (अस्ति) **तान् प्रति**=तान् पण्डितान् प्रति, **मानम्**=गर्वम्, **उज्झत**=परित्यजत, **तैः**=विद्वद्भिः **सह**=साकम् **कः**=मनुष्यः **स्पर्धते**=स्पर्धां कर्तुं शक्नोति? न कोऽपीत्यर्थः। **शार्दूलविक्रीडितं छन्दः**।

भावार्थः—यच्चौरैर्हर्तुं न शक्यते, यन्नित्यं सुखकारि, यच्च दानेन नितरां वृद्धिं याति, एवंभूतमविनाशि विद्यारूपं गुप्तं धनं येषां विद्यते तेषां राजभिर्धनिकैर्वा मदान्धैः कदाप्यवमानना न कार्या। तानभिभवितुं न कोऽपि समर्थः।

भाषार्थ—हे राजाओं! जो धन चोरको भी दिखाई नहीं पड़ता है, जो सदा अनिर्वचनीय सुखको प्रदान करता है, जो निरन्तर बाँटनेपर भी बढ़ता ही रहता है तथा जो प्रलय के समय भी विनष्ट नहीं होता है, ऐसा विद्या नामक अत्यन्त गुप्त धन जिनके पास है उनके सामने गर्व करना छोड़ दो, उनकी बराबरी भला कौन कर सकता है? ॥ १६ ॥

विद्वानोंको धनसे वशमें नहीं किया जा सकता—

अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मावमंस्था-
स्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभिनवमदलेख्याश्यामगण्डस्थलानां
न भवति विसतन्तुर्वारणं वारणानाम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—अधिगतपरमार्थान्, पण्डितान्, मा, अवमंस्थाः, लघु, तृणमिव, लक्ष्मीः, तान्, नैव, संरुणद्धि, अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां, वारणानां विसतन्तुः, वारणं, न भवति।

पदार्थं—अधिगतपरमार्थान्=समझ लिया है वास्तविक तत्त्वको जिन्होंने ऐसे, पण्डितान्=विद्वानोंका। मा अवमंस्थाः=अनादर न करें। (क्योंकि) लघु तृणमिव=हलके तिनके जैसी। लक्ष्मीः=संपत्ति, तान्=उन्हें। नैव संरुणद्धि=नहीं रोक सकती। अभिनव-मदलेखा=नई नई दानरेखासे, श्यामगण्डस्थलानां=काले कपोलोंवाले। वारणानां=हाथियोंको। वारणं=रोकनेवाला। विसतन्तुः=कमलनालका रेशा (सूत)। न भवति=नहीं होता।

व्याख्या—**अधिगतपरमार्थान्** [अधिगतः परमार्थः यैः तान्]=ज्ञाततत्त्वार्थान्, **पण्डितान्**=सुधियः। **मा अवमंस्थाः**=न तिरस्कुरु। **लघु**=तुच्छं। **तृणमिव**=घास इव, लक्ष्मीः=सम्पत्तिः, **तान्**=पण्डितान्। **नैव संरुणद्धि**=संरोद्धुं नैव शक्नोति। **विसतन्तुः**=मृणालसूत्रं। **अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां** [अभिनवा या मदलेखा, तया श्यामानि गण्डस्थलानि येषां ते, तेषाम्]=नूतनया दानपंक्त्या मलिनकपोलानां, **वारणानां**=गजानां, **वारणं**=रोधकः **न भवति**। **मालिनीछन्दः**। तल्लक्षणं–**न न म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः**।

भावार्थः—संपदं तृणवन्मन्यमाना निर्लोभा ये विद्वांसः सन्ति तान् धनादिभिर्वशीकर्तुं प्रयत्नो न कर्तव्यः। यतोहि मदोन्मत्तानां गजानां बन्धनं कोमलतरेण मृणालसूत्रेण कर्तुं न शक्यते।

भाषार्थ—शास्त्रोंके वास्तविक मर्मको समझानेवाले विद्वानोंका अपमान न करें। तुच्छ तिनकेके समान संपत्तिसे उन्हें वश में नहीं किया जा सकता। नई-नई मदरेखासे काले कपोलोंवाले मदोन्मत हाथी को कमलनालके सूतसे बाँधकर नहीं रोका जा सकता। यह मालिनी छन्द है इसमें दो न ।।।, म SSS, दो य ।SS ये गण होते हैं और ७।७ पर विराम होता है ॥ १७ ॥

अम्भोजिनीवनविहारविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥ १८ ॥

अन्वय—नितरां, कुपितः, विधाता, हंसस्य, अम्भोजिनीवनविहारविलासम्, एव, हन्ति, अस्य, दुग्धजलभेदविधौ, प्रसिद्धां, वैदग्ध्यकीर्तिम्, अपहर्तुं, तु, असौ, न समर्थः।

पदार्थ—नितरां कुपितः=अत्यन्त क्रुद्ध (होनेपर भी), विधाता=ब्रह्मा, हंसस्य=

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
हंसके। अम्भोजिनीवनविहारविलासम्, एव = कमलिनी वनमें क्रीडा करनेके आनन्दको ही। हन्ति = नष्ट कर सकता है। तु = किन्तु। अस्य = इस (हंस) की। दुग्धजलभेदविधौ = दूध और जलको पृथक् करनेकी प्रक्रियामें। प्रसिद्धां = विख्यात। वैदग्ध्यकीर्तिं = चतुरताके यशको, अपहर्तुं = हरण करनेमें। असौ = यह (ब्रह्मा), न समर्थः = समर्थ नहीं।

व्याख्या—कुपितः = क्रोधयुतः **अपि विधाता** = ब्रह्मा, **हंसस्य** = मानसौकसः राजहंसस्य, **अम्भोजिनीवनविहारविलासम्**—[अम्भोजिनीनां वनम्, तस्मिन् विहारः, तस्य विलासः, तम्] = नलिनीसमूहमध्ये क्रीडाजनितमानन्दं एव **नितराम्** = सर्वथा, **हन्ति** = विनाशयति, तु = परन्तु, **असौ** = विधिः, **अस्य** = राजहंसस्य, **दुग्धजल-भेदविधौ**, [दुग्धं च जलञ्च, तयोः भेदः, तस्य विधिः, तस्मिन्] = नीर-क्षीरविवेके **प्रसिद्धाम्** = विशेषेण ख्याताम्, **वैदग्ध्यकीर्तिम्**, [विदग्धस्य भावो वैदग्ध्यं तेन कीर्तिः, ताम्] = चातुर्ययशः **अपहर्तुम्** = दूरीकर्तुम्, **न समर्थः** = नैव शक्तः भवति। **वसन्ततिलका-वृत्तम्**। तल्लक्षणं तु—"**उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः**"

भावार्थ—यदि ब्रह्मा हंसोपरि क्रुद्धः स्यात्तदा सरोनिवासात्तं निष्काश्य तस्य कमलैः सह विहारे बाधां कर्तुं शक्नोति, किन्तु तस्य नीरक्षीरविवेकात्मकं गुणं हर्तुं न प्रभवति। एवमेव विदुषामवमाननां कृत्वापि तेषां वैदुष्यं तु न हर्तुं शक्यते, ते यत्र गमिष्यन्ति तत्रैव प्रभविष्यन्ति।

भाषार्थ—यदि ब्रह्मा भी हंसपर अत्यन्त रुष्ट हो जायँ तो अधिक से अधिक उसे सरोवर से हटाकर कमलिनियोंके साथ उसकी क्रीडामें विघ्न डाल सकते हैं। परन्तु मिलेहुये दूध और जलको अलग-अलग करनेकी उसकी प्रसिद्ध कीर्तिको विनष्ट करनेमें कभी भी सफल नहीं हो सकते। (इसी भांति राजा भी कविके धनको छीन सकता है, राजदरबारमें आनेसे भी रोक सकता है किन्तु उसके कवित्व या वैदुष्यको तो नहीं ही छीन सकता)।

यह वसन्ततिलका छन्द है। इसके प्रत्येक चरणमें त SSI भ SII दो ज ISI तथा दो गुरु SS होते हैं ॥१८॥

वाणी सबसे बड़ा आभूषण है—

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥१९॥

पदार्थ—पुरुषं = व्यक्तिको। केयूराणि = केयूर (बाजूबन्द)। न भूषयन्ति = सुशोभित नहीं कर सकते। चन्द्रोज्ज्वलाः = चन्द्रमाकी तरह चमकते हुये। हाराः = हार (भी), न = नहीं। स्नानं न = स्नान भी नहीं, विलेपनं न = सुगन्धित तेल चन्दनादि लगाना भी नहीं। कुसुमं न = फूलोंकी मालाएँ भी नहीं, अलङ्कृताः सजाये हुये, मूर्धजाः = केश। न = नहीं (सुशोभित कर सकते)। एका = केवल। वाणी = (वह) वाणी ही। समलङ्करोति = अच्छी प्रकार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अलंकृत करती है। या=जो । संस्कृता=(शास्त्रोंसे) परिष्कृत हुई । धार्यते=धारण की जाती है। (क्योंकि) भूषणानि=आभूषण तो, क्षीयन्ते खलु=नष्ट हो जाते हैं। वाग्भूषणं= वाणीरूप आभूषण, सततं भूषणम्=निरन्तर आभूषण बना रहता है।

व्याख्या—केयूराणि=बाहुभूषणविशेषाणि-अङ्गदानि, पुरुषम्=मनुष्यम्, न भूषयन्ति=न अलङ्कुर्वन्ति। चन्द्रोज्ज्वलाः=[चन्द्रवत् उज्ज्वलाः]=इन्दुनिर्मलाः, हाराः= मुक्तादिनिर्मिताः स्रजः, न भूषयन्ति। स्नानम्=जलावगाहनम् न भूषयति=इति वचनविपरिणामः। विलेपनम्=चन्दनकर्पूरादिकम्, न भूषयति। कुसुमम्=प्रसूनमपि न भूषयति। अलङ्कृताः=कङ्कतिकया प्रसाधिताः सरलतां वक्रताञ्च प्रापिता इति यावत्। मूर्धजाः [मूर्ध्नि जाताः]=केशा इत्यर्थः। न भूषयन्ति। (केवलम्) एका=अद्वितीया, वाणी= वाग्, पुरुषं=मानवं, समलङ्करोति--सम्यक्=पूर्णरूपेण भूषयन्ति, या=वाणी, संस्कृता=व्याकरणादिभिः शुद्धा, धार्यते=आनने स्थाप्यते, खलु=निश्चयेन। भूषणानि =केयूरकटकादीनि, क्षीयन्ते=विनश्यन्ति (किन्तु) वाग्भूषणम्-वाग्=वाणी एव भूषणम्=अलङ्कारः, सततम्=सर्वदा, भूषणम्=अलङ्कारो भवतीति शेषः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। (लक्षणं द्र० ११)

भावार्थ—केयूराणि, हाराः, स्नानं, विलेपनं, पुष्पस्रक्, अलङ्कृताः केशा वा यत् पुरुषमलंकुर्वन्ति तत्तेषामलं करणं सर्वं नश्वरं, यतोहि तानि भूषणानि स्वयमेव क्षीयन्ते। किन्तु शुद्धा वाणी यत् सौन्दर्यं जनयति तत्तु चिरस्थायि भवति। अतः वाग्भूषणायैव सर्वैः प्रयतनीयम्।

भाषार्थ—मानवको (वस्तुतः) न तो बाजूबन्द आदि गहने ही शोभित करते हैं, न चन्द्रमाकी भाँति चमकनेवाले मोतियों के हार, न स्नान, न चन्दन कपूर आदि के द्वारा लेपन, न फूल और न सँवारे हुए बालही मनुष्यकी शोभा बढ़ाते हैं। एक केवल (व्याकरण आदि से) शुद्ध वाणी मनुष्यको सर्वदा विभूषित करती है। एवं अन्य आभूषण तो शीघ्र नष्ट भी हो जाते हैं किन्तु वाणीरूप भूषण सर्वदा पास में रहता है ॥ १९ ॥

विद्याकी महिमा—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्,
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्याविहीनः पशुः ॥२०॥

अन्वयः—विद्या नाम, नरस्य, अधिकं, रूपं, प्रच्छन्नगुप्तं, धनं, विद्या, भोगकरी, यशःसुखकरी, विद्या, गुरूणां गुरुः, विद्या, विदेशगमने, बन्धुजनः, विद्या, परं, दैवतम्, विद्या, राजसु, पूज्यते, धनं, नहि, विद्याविहीनः, पशुः, (अस्ति)।

पदार्थ—विद्यानाम=विद्यानामकी वस्तु, नरस्य=मनुष्यका, अधिकं रूपं=विशेष स्वरूप (सौन्दर्य) है। प्रच्छन्नगुप्तं धनं=गुप्त छिपा हुआ धन है। विद्या भोगकरी=

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
विद्या ऐश्वर्यको देनेवाली, यशःसुखकरी=यश और सुखको देनेवाली है। विद्या गुरूणां गुरुः=विद्या गुरुओंकी भी गुरु है। विदेशगमने=परदेश जानेपर विद्या, बन्धुजनः=(विद्या) बान्धवोंकी तरह (सहायता करनेवाली) है। विद्या परं दैवतं=विद्या सबसे बड़ी देवता है। राजसु=राजाओंमें, विद्या पूज्यते=विद्याकी ही पूजा होती है, नहि धनं=धनकी नहीं। (अतः) विद्याविहीनः=विद्यासे रहित व्यक्ति, पशुः=पशु ही है।

व्याख्या—विद्या नाम=विद्यारूपं वस्तु, नरस्य=मनुष्यस्य, अधिकम्=श्रेष्ठं रूपम्=स्वरूपम्, प्रच्छन्नगुप्तं [प्रच्छन्नञ्च तद् गुप्तं च] अन्तर्द्वारसुरक्षितं, धनं=द्रव्यम्, चास्ति। विद्या भोगकरी [भोगं करोतीति]=श्रेष्ठं भोग्यपदार्थम्, यशःसुखकरी=यशश्चकीर्तिश्च सुखम्=आनन्दश्च ते करोति तच्छीला, विद्या गुरूणाम्=पूज्यानां, अपि गुरुः=महती श्रेष्ठा, विद्या विदेशगमने=परदेशयात्रायाम् बन्धुजनः, [बन्धुश्चासौ जनश्च]=बन्धुवर्गः, हितकारित्वादिति भावः। विद्या परा=उत्तमा, देवता=देवः, प्रसन्नायां सत्यां सर्वार्थदातृत्वादिति यावत्, विद्या, राजसु=नृपेषु मध्ये, पूज्यते=आराध्यते, धनम्=वित्तम्, न हि=नैव पूज्यते, (अतः) विद्याविहीनः [विद्यया विहीनः]=रहितः पुरुषः, पशुः=चतुष्पादेव भवतीति शेषः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

भावार्थः—श्रेष्ठं रूपं, सुगुप्तं धनं, भोगैश्वर्ययशःप्रदा, गुरुभिरपि पूज्या, विदेशे वान्धववत् सहायिका सर्वोत्तमा देवता च विद्यैवास्ति। विद्ययैव राजसु नरस्य प्रतिष्ठा भवति नतु धनेन। अतः विद्याहीनो नरः पशुरिव गण्यते।

आशय—विद्या ही पुरुषका सुन्दर स्वरूप और अत्यन्त गुप्त संपत्ति है। विद्या (वस्त्रादि) भोग्य पदार्थोंको देने वाली है। विद्या कीर्ति तथा सुखको प्रदान करती है। विद्या गुरुओंका भी गुरु है। विद्या विदेश जानेपर बन्धु की तरह सहायता करती है। वही सबसे बड़ी देवता है। राजाओंके यहाँ धनकी पूजा न होकर विद्याकी ही पूजा होती है। इसीलिये विद्यासे हीन मनुष्य पशु है ॥ २० ॥

विद्याके प्राधान्यकी उदाहरणों द्वारा पुष्टि—

क्षान्तिश्चेत्कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोऽस्ति चेद्देहिनां
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्यानवद्या यदि
व्रीडाचेत्किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ॥२१॥

अन्वयः—देहिनां शान्तिः चेत्, कवचेन, किम्, क्रोधः, अस्ति चेद्, अरिभिः किम्, ज्ञातिः, चेद्, अनलेन, किम्, यदि सुहृद्, दिव्यौषधैः, किं फलम्, यदि दुर्जनाः, सर्पैः किम्, यदि, अनवद्या, विद्या, धनैः किम्, व्रीडा चेत्, भूषणैः, किमु, यदि सुकविता अस्ति चेत्, राज्येन किम्।

पदार्थ—देहिनां=प्राणियोंमें, क्षान्तिः चेत्=यदि क्षमा है (तो), कवचेन किं=

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
कवचसे क्या होगा ? (क्षमासे ही उनकी रक्षा हो जायगी), क्रोधः अस्ति चेत्=यदि (शरीरमें) क्रोध है तो, अरिभिः किम्=शत्रुओंकी क्या आवश्यकता ? (क्रोध हो सबसे बड़ा शत्रु है।) ज्ञातिः चेत्=बन्धु-बान्धव हैं, (तो) अनलेन किं=अग्निकी क्या आवश्यकता (बन्धु-बान्धव ही संतप्त कर डालेंगे), यदि सुहृद्=यदि मित्र हैं (तो) दिव्यौषधैः किम्=दिव्य औषधोंसे क्या लाभ (मित्रोंकी वाणी ही अमृतका काम करेगी), यदि दुर्जनाः=यदि दुष्टोंका समूह है (तो), सर्पैः किम्=सर्पोंकी क्या आवश्यकता, (दुर्जन ही अपने कुवाक्योंसे डसते रहेंगे), यदि अनवद्या विद्या=यदि निर्दुष्ट विद्या है तो, धनैः किं=धनोंसे क्या करना है (विद्या ही सबसे उत्तम धन है)। लज्जा चेद्=यदि लज्जा है (तो), भूषणैः किम्=भूषणोंकी क्या आवश्यकता (लज्जा ही सबसे बड़ा आभूषण है), यदि सुकविता अस्ति=यदि अच्छा कवित्व है (तो), राज्येन किम्=राज्यकी क्या आवश्यकता ?

व्याख्या—**देहिनम्**=शरीरधारिणां, मनुष्याणाम्, **क्षान्तिः**=क्षमा चेत्=यदि-अस्ति (तदा) **कवचेन**=वर्मणा, लोहमयेन शरीराच्छादनविशेषेण, **किं फलम्**=किं प्रयोजनम्, **क्रोधः**=कोपः, **चेत्**=यदि, अस्ति तदा **अरिभिः**=रिपुभिः, **किं फलम्**, **ज्ञातिः**=दायादवर्गः, **चेत्**=यद्यस्ति तदा, **अनलेन**=अग्निना **किम्**=किं प्रयोजनम्, **यदि**=चेत्, **सुहृद्**=मित्रम् अस्ति तर्हि **दिव्यौषधैः** [दिव्यानि च तान्यौषधानि]=गुणातिशयशालीनि भेषजानि तैरपि **किंफलम्**=को लाभः, यदि. **दुर्जनाः**=खलाः (सन्ति) तदा **सर्पैः**=पन्नगैः **किम्**=किं प्रयोजनम्, यदि, **अनवद्या**=अनिन्द्या, **विद्या**=ज्ञानम् अस्ति, तदा **धनैः**=द्रव्यैः **किम्**=किं फलम्, **चेत्**=यदि, **व्रीडा**=लज्जा अस्ति तर्हि **भूषणैः**=कुण्डलकटकाद्याभूषणैः **किम्**=किं फलम्, (किञ्च) यदि **सुकविता**=[शोभना कविता] सहृदयहृदयाह्लादिनी कविता-कविकर्म, अस्ति तदा **राज्येन**=राष्ट्रेण, राजलक्ष्म्या-इत्यर्थः। **किम्**=किमपि **प्रयोजनं** नास्तीति भावः। **शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्**।

भावार्थः—देहिनां देहं क्षमया कवचेनेव रक्ष्यते, क्रोधेन शत्रुभिरिव विनाश्यते, बान्धवैः अग्निनेव प्रदह्यते, सुहृद्भिः दिव्यौषधैरिव संरक्ष्यते, दुर्जनैः सर्पैरिव दश्यते, निर्दुष्टया विद्यया प्रभूतैर्धनैरिव गोप्यते, लज्जयाऽऽभूषणैरिव भूष्यते सुकवितया च सर्वोच्चपदे स्थाप्यते, अतः क्षमादिषु सत्सु देहे किं कवचादिभिः।

भाषार्थ—यदि मानवमें क्षमा हो तो कवचकी क्या आवश्यकता, क्रोध हो तो रिपुओंसे तथा दायाद हो तो आगसे क्या प्रयोजन, यदि मित्र हो तो अच्छी दवायें किस कामकी, यदि दुर्जन हों तो सर्पोंकी फिर क्या आवश्यकता, दोषहीन विद्या हो तो अन्य धनकी क्या आवश्यकता, यदि लज्जा हो तो अन्य गहनोंसे क्या काम, तथा सुन्दर कविता हो तो फिर राज्यसे क्या प्रयोजन, (अर्थात् मनुष्यके लिए क्षमा सबसे बड़ा कवच है, क्रोध सबसे बड़ा शत्रु है, दायाद ही आगकी तरह नाश करने वाले हैं, मित्र सबसे अच्छी दवा है, खल सर्पोंकी भाँति विषैले होते हैं, निर्दोष ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ धन है, लज्जा सभी भूषणों से बढ़कर है तथा राज्यके ऐश्वर्य की अपेक्षा सुन्दर कविता ही अधिक सुखदायिनी होती है) ॥२१॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

दाक्षिण्यं स्वजने, दया परिजने, शाठ्यं सदा दुर्जने,
प्रीतिः साधुजने, नयो नृपजने, विद्वज्जने चार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने, क्षमा गुरुजने, नारीजने धृष्टता,
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥२२॥

अन्वयः—स्वजने दाक्षिण्यं, परिजने दया, दुर्जने सदा शाठ्यं, साधुजने प्रीतिः, नृपजने नयः, विद्वज्जने चाऽऽर्जवं, शत्रुजने शौर्यं, गुरुजने क्षमा, नारीजने धृष्टता। ये च पुरुषाः एवं कलासु कुशलाः, तेष्वेव लोकस्थितिः [अस्ति] ॥

पदार्थं—स्वजने=आत्मीय जनोंपर, दाक्षिण्यं=अनुकूलता। परिजने=सेवक आदिपर, दया=कृपा। दुर्जने=दुष्टोंपर, सदा शाठ्यम्=नित्य शठता। साधुजने=सज्जनोंमें, प्रीतिः=प्रेम। नृपजने=राजाओंके विषयमें, नयः=नीति (का व्यवहार) । च विद्वजने=और विद्वानों (के विषयमें,) आर्जवम्=सरलता। शत्रुजने=शत्रुजनोंपर, शौर्यं=पराक्रम। गुरुजने=पूज्यजनोंके विषयमें, क्षमा=सहनशीलता। कान्ताजने=स्त्रीजनोंमें, धृष्टता=प्रगल्भता। एवं=इस प्रकार, ये च पुरुषाः=जो भी पुरुष, कलासु=(उपर्युक्त) गुणोंमें, कुशलाः==चतुर हैं, तेषु एव=उनपर ही, लोकस्थितिः=संसार स्थित है।

व्याख्या—,स्वजने=आत्मीयवर्गे, पुत्रकलत्रादिष्विति भावः, दाक्षिण्यम्, [दक्षिणस्य भावः]=उदारस्वभावः, परिजने=परिचारकवर्गे, दया=कृपा, दुर्जने=खले, सदा=सर्वदा, शाठ्यम् [शठस्य भावः]=शठता, वञ्चकत्वं वा, साधुजने=सज्जने, प्रीतिः=स्नेहः, नृपजने=[नृपश्चासौ जनश्च तस्मिन्] राजसु नयः=नीतिरनुवर्तनरूपेति भावः, विद्वज्जने=[विद्वांचासौ जनश्च तस्मिन्]=पण्डितवर्गे, च आर्जवम्=सरलता, शत्रुजने=रिपुवर्गे, शौर्यम् [शूरस्य भावः]=पौरुषम्, गुरुजने=पूजनीयेषु जनेषु, क्षमा=सहनशीलता, कान्ताजने=नारीवर्गे धृष्टता=धाष्टर्यम् (क्वचिद् धूर्ततेति पाठः), ये च एवम्=एतादृशाः, पुरुषाः=मनुष्याः, कलासु=पूर्वोक्तासु जनरञ्जनकलासु, कुशलाः=निपुणाः (सन्ति) तेषु=मनुष्येषु, एवं=निश्चयेन लोकस्थितिः [लोकस्य स्थितिः]=लोकमर्यादा वर्तते। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

भावार्थः—स्वजनेषु दाक्षिण्यं, परिजने दया इत्यादयो श्लोकोक्ताः गुणाः येषु विद्यन्ते त एव सज्जना लोके मर्यादां स्थापयन्ति, यया च मर्यादया लोकव्यवहारः सम्यग्रीत्या प्रचलति।

भाषार्थ—जो लोग (पुत्र स्त्री आदि) के साथ उदारता, नौकरोंके साथ दया, दुष्टोंके साथ शठता, सज्जनोंके साथ स्नेह, राजाओंके साथ नीति, विद्वानोंके साथ सीधापन, दुश्मनोंके साथ शूरता, गुरुजनोंके साथ सहनशीलता तथा स्त्रियोंके साथ धृष्टता (धूर्तता) का व्यवहार करते हैं उन्हींपर संसारकी मर्यादा टिकी है। (जो लोग पूर्वोक्त सभी व्यवहारोंमें दक्ष हैं वे ही इस संसारमें मर्यादापूर्वक रह सकते हैं अन्य नहीं) ॥ २२ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्सङ्गकी महिमा—

जाड्यं धियो हरति, सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति, पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति. दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ? ।।२३।।

अन्वयः—सत्सङ्गतिः पुंसां-धियो जाड्यं हरति, वाचि सत्यं सिञ्चति, मानोन्नतिं दिशति, पापमपाकरोति, चेतः प्रसादयति, दिक्षु कीर्तिं, तनोति । तत् कथय सत्सङ्गतिः पुंसां किं न करोति ?

पदार्थं—सत्सङ्गतिः = सज्जनोंका सङ्ग । पुंसां = मनुष्योंके । धियः = बुद्धिकी, जाड्यं = जड़ताको, हरति = नष्ट करता है । वाचि = वाणीमें, सत्यं सिञ्चति = सत्यको सींचता है । मानोन्नतिं = सम्मानकी वृद्धिको, दिशति = देता है । पापं = पापको, अपाकरोति = दूर करता है । चेतः = चित्तको, प्रसादयति = प्रसन्न (निर्मल) कर देता है । दिक्षु = दिशाओंमें, कीर्तिं = यशको, तनोति = फैलाता है कथय = कहिये, किं न करोति = क्या नहीं करता ।

व्याख्या—सत्सङ्गतिः [सताम् सङ्गतिः] = सज्जनसहवासः, धियः = बुद्धेः, जाड्यम् [जडस्य भावः] = मन्दताम् , हरति = दूरीकरोति । वाचि = वचने, सत्यम् = तथ्यम् , सिञ्चति = पल्लवयति, आनन्दयतीत्यर्थः । मानोन्नतिम् [मानस्य उन्नतिम्] = सम्मान-वृद्धिम् , दिशति = सम्पादयति । पापम् = कल्मषम् , अपाकरोति = नाशयति, चेतः = हृदयम् , प्रसादयति = आह्लादयति । दिक्षु = काष्ठासु, कीर्तिम् = यशः, तनोति = विस्तारयति । तत् कथय = वद, सा सत्सङ्गतिः = महात्मनां मध्ये निवासः, पुंसाम् = पुरुषाणाम् किं न करोति = किं न निष्पादयति ? अपितु सर्वमेव विधत्ते । वसन्ततिलकावृत्तम् । (लक्षणं द्र० श्लोक १८) ।

भावार्थः—सज्जनसङ्गतिः जनानां बुद्धिमान्द्यं हरति, सत्यतां वर्धयति, संमानं प्रददाति, पापकर्मणो निवार्य पुण्यं वर्धयति, चित्तप्रसादनं करोति दिक्षु च यशः प्रसारयति, नूनं सर्वार्थ-साधकः सत्सङ्गः ।

भाषार्थ—सज्जनोंकी सङ्गति बुद्धिकी मन्दताको दूर करती है, वाणीमें सत्यता लाती है, सम्मानकी अभिवृद्धि करती हैं, पापको नाश करती है, देश विदेशके कोनेमें यश फैलाती है, इस प्रकार बताओ सत्संगति मानवके लिए क्या-क्या नहीं करती है अर्थात् सत्सङ्गति मनुष्योंके पूर्वोक्त सभी कार्योंको पूरा करती है ॥ २३ ॥

कवियोंकी महिमा—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।।२४।।

अन्वयः—सुकृतिनो, रससिद्धाः, ते, कवीश्वराः, जयन्ति, येषां, यशःकाये, जरामरणजं, भयं, नास्ति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पदार्थ—सुकृतिनः=पुण्यात्मा। रससिद्धाः=रसों (=पारद अथवा शृङ्गारादि रस) को जिन्होंने सिद्ध कर लिया है ऐसे। ते=वे। कवीश्वराः=कविश्रेष्ठ। जयन्ति=सर्वश्रेष्ठ हैं। येषां=जिनके। यशःकाये=कीर्तिरूप शरीरमें। जरामरणजं=बुढ़ापा तथा मृत्यु-जन्य। भयं नास्ति =भय नहीं है।

व्याख्या—सुकृतिनः [सुकृतमस्त्येषाम्]=पुण्यशालिनः, रससिद्धाः=[रसैः रसेषु वा सिद्धाः]=पारदसेवनेन लब्धसिद्धयः पक्षे शृंगारादिरसवर्णने प्रसिद्धाः, ते कवीश्वराः= योगिनः पक्षे वश्यसरस्वतीकाः महाकवयः, जयन्ति=सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते, येषाम्=योगिनां महाकवीनाञ्च, यशःकाये [यशः एव कायः तस्मिन्]=कीर्तिदेहे, जरामरणजम् [जरा च मरणं च जरामरणे ताभ्यां जायते इति]=वार्द्धक्यमृत्युजन्यमित्यर्थः, भयम्=भीतिः,नास्ति= न वर्तते। अनुष्टुप्छन्दः।

भावार्थ—पुण्यात्मनां रसिकशिरोमणीनां महाकवीनां प्रशंसनीयो महिमा सिद्धपारदानां योगीन्द्राणां तनुरिवैतेषामपि यशःकायं न कदापि वृद्धत्वं मृत्युं वा प्राप्नोति।

भावार्थः—पुण्यशाली तथा रससिद्ध (पारदके सेवनसे सिद्ध, कविपक्ष में—शृङ्गार आदि रसोंमें प्रसिद्ध) वे कवीश्वर (योगी एवं महाकवि) सबसे उत्कृष्ट हैं जिनके यशरूपी शरीरमें बुढापा तथा मरणसे तनिक भय नहीं है। (पारदके सेवनसे सिद्ध हुए योगी हजारों वर्षतक जीते हैं और उन्हें जरामरणका अनुभव नहीं होता है वैसे ही शृङ्गार वीर आदि काव्यके रसोंका वर्णन करनेमें सिद्धहस्त महाकवि अपने काव्यनिर्माणकी धुनमें जरामरणकी तनिक भी परवाह नहीं करते अतः दोनों सबसे उत्तम हैं) ॥ २४ ॥

भगवत्कृपाका फल—

सूनुः सच्चरितः, सती प्रियतमा, स्वामी प्रसादोन्मुखः
स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनो, निष्क्लेशलेशं मनः।
आकारो रुचिरः, स्थिरश्च विभवो, विद्यावदातं मुखं,
तुष्टे विष्टपकष्टहारिणि हरौ सम्प्राप्यते देहिना ॥२५॥

अन्वयः—विष्टपकष्टहारिणि, हरौ, तुष्टे, सत्येव, देहिना, सच्चरितः सूनुः, सती प्रियतमा, प्रसादोन्मुखः स्वामी, स्निग्धं मित्रम्, अवञ्चकः परिजनः, निष्क्लेशलेशं मनः, रुचिरः आकारः, स्थिरश्च विभवः, विद्यावदातं च मुखम्, प्राप्यते।

पदार्थ—विष्टपकष्टहारिणि=संसारके कष्टोंको हरण करनेवाले। हरौ=भगवान्के। तुष्टे (सति)=प्रसन्न होनेपर। देहिना=मनुष्य। सच्चरितः सूनुः=चरित्रवान् पुत्रको। सती प्रियतमा=पतिव्रता स्त्रीको। प्रसादोन्मुखः स्वामी=प्रसन्न रहते हुए स्वामीको, स्निग्धं मित्रं= स्नेही मित्रको। अवञ्चकः परिजनः=जो धोखा नहीं देते ऐसे सेवकोंको। निष्क्लेशलेशं मनः= जिसमें किसी प्रकारका क्लेश नहीं ऐसे चित्तको। रुचिरः आकारः=सुन्दर स्वरूपको। स्थिरश्च विभवः=स्थिर सम्पत्तिको। विद्यावदातं मुखं=विद्यासे चमकते हुए मुखको। सम्प्राप्यते=प्राप्त करता है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—विष्टपकष्टपहारिणि ,[विष्टपस्य कष्टम् हरति इति विष्टपकष्टहारी, तस्मिन्]=लोकदुःखनाशके हरौ=श्रीविष्णौ, तुष्टे=संतुष्टे सत्येव (क्वचिद् विष्टपहारिणीष्टदहराविति-पाठः, तत्र जगज्जालसंतापहारिणि, इष्टदहरौ=[इष्टं ददाति, इष्टदः स चासौ हरिश्च, तस्मिन्] अभीष्टप्रदे पुण्डरीकाक्षे, सतीत्यर्थः) देहिना=शरीरवता मनुष्येण इति यावत, सच्चरितः=सदाचारी, सूनुः =तनयः, सती=पतिव्रता, प्रियतमा=[अतिशयेन प्रिया]=भार्या, प्रसादोन्मुखः=[प्रसादे उन्मुखः] सुप्रसन्न इति यावत , स्वामी=नृपः, प्रभुः, स्निग्धम्=प्रियम् , प्रेमास्पदम्, मित्रम्=सुहृत, अवञ्चकः [न वञ्चकः]=विश्वसनीयः, परिजनः=सेवकः, निष्क्लेशलेशम् [क्लेशस्य लेशः, निर्गतः क्लेशलेशः यस्मात् तत्]=अत्यन्तं दुःखरहितम् , मनः=स्वान्तम् , रुचिरः=मनोहरः, आकारः=आकृतिः, स्थिरः=स्थायी, विभवः=समृद्धिः, विद्यावदातम् [विद्यया अवदातम्]=ज्ञानभास्वरं, मुखम्=आस्यम् , च इत्येतत्सर्वं, सम्प्राप्यते=सम्यग् लब्धुं शक्यते । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

भावार्थः—जगतां त्राणदे भगवति प्रसन्ने सत्येव जनः सदाचारिणं सुतं, पतिव्रतां स्त्रियं, कृपाकरं स्वामिनं, स्नेहशीलं मित्रं, विश्वस्तं परिजनं, क्लेशरहितं चित्तं, रुचिरामाकृतिं, स्थिरं धनं, विद्वत्त्वं च प्राप्नोति ।

भाषार्थ—इस संसारके सभी कष्टोंको हरण करनेवाले विष्णु भगवान्के प्रसन्न होनेपर ही मानवको शीलवान् पुत्र, पतिव्रता स्त्री, प्रसन्न रहनेवाला स्वामी, स्नेही मित्र, विश्वासी सेवक, सदा दुःखसे रहित मन, सुन्दर कान्ति, स्थायी धनसम्पत्ति, विद्यासे विभूषित मुख, ये सभी प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

कल्याणका मार्ग—

प्राणाघातान्निवृत्तिः, परधनहरणे संयमः, सत्यवाक्यं,
काले शक्त्या प्रदानं, युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ।
तृष्णास्रोतोविभङ्गो, गुरुषु च विनयः, सर्वभूतानुकम्पा,
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः ॥२६॥

अन्वयः—प्राणाघातान्निवृत्तिः, परधनहरणे संयमः, सत्यवाक्यं, काले शक्त्या प्रदानं, परेषां युवतिजनकथामूकभावः, तृष्णास्रोतोविभङ्गः, गुरुषु च विनयः, सर्वभूतानुकम्पा, एष सर्वशास्त्रेषु सामान्यः अनुपहतविधिः—श्रेयसां पन्थाः ।

पदार्थ—प्राणाघातात्=प्राणोंकी हत्यासे, निवृत्तिः=विमुखता । परधनहरणे=दूसरोंकी संपत्तिको लेनेमें, संयमः=चित्तको रोकना । सत्यवाक्यं=सत्यबोलना । काले=समयपर, शक्त्या=शक्तिके अनुसार, प्रदानं=देना । परेषाम्=दूसरोंकी । युवतिजनकथामूकभावः=स्त्रीविषयकवार्तामें चुपरहना । तृष्णास्रोतोविभङ्गः=लोभके प्रवाहका अवरोध । गुरुषु च विनयः=और गुरुजनोंसे नम्रता । सर्वभूतानुकम्पा=सब प्राणियोंपर दया, एषः=यह,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
सर्वशास्त्रेषु = सर्वशास्त्रोंमें, अनुपहतविधिः = निर्विवादरूपसे कहा हुआ। श्रेयसां = कल्याणों का। पन्थाः (अस्ति) = मार्ग है।

व्याख्या--प्राणाघातात् [प्राणानाम् आघातः, तस्मात्] = जीवहत्यातः निवृत्तिः = पराङ्मुखता। परधनहरणे [परेषां धनानि परधनानि, तेषां हरणम्, तस्मिन्] = परद्रव्यादाने, संयमः = मनसो निग्रहः। सत्यवाक्यम् [सत्यं च तद्वाक्यं च] = तथ्यवचनम्। काले = समये शक्त्या = शक्त्यनुसारं प्रदानम् = धनादिदानम्, परेषाम् = अन्येषां जनानाम् युवतिजनकथामूकभावः, युवतिजनकथासु = नारीविषयकवार्तासु, मूकभावः = मौनालम्बनम्, तृष्णास्रोतोविभङ्गः [तृष्णायाः स्रोतांसि, तेषां विभङ्गः] = लोभप्रवाहावरोधः। गुरुषु = पूज्येषु, विनयः = नम्रता, सर्वभूतानुकम्पा = सर्वेषु = निखिलेषु, भूतेषु = प्राणिषु, अनुकम्पा = दया, च एषः = अयम्, सर्वशास्त्रेषु = सर्वेष्वागमेषु अनुपहतविधिः, [अनुपहतः विधिः यस्य सः] = अक्षुण्णं विधानं। सामान्यः = सर्वजनसरलः, श्रेयसाम् = शुभानां पन्थाः = मार्गो विद्यते। स्रग्धरावृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—

"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।"

भावार्थः—अहिंसाभावः, अचौर्यं, सत्यवादिता, दानशीलत्वं, परस्त्रीकथास्वप्रवृत्तिः, निर्लोभता, नम्रत्वं, सर्वप्राणिष्वनुग्रहभावश्चेत्येते गुणाः नरं कल्याणपथे नयन्ति ॥ २६ ॥

भाषार्थ—प्राणिहिंसासे दूर रहना, दूसरेका धन चुरानेसे अपने मनको रोकना, सत्य बोलना, समयपर यथाशक्ति दान देना, दूसरोंकी स्त्रियोंकी चर्चाके समय मौन होजाना, लोभको कम करना, पूज्यलोगोंके प्रति नम्रहोना, सभी जीवोंपर दया करना—यही सभी शास्त्रोंसे अनुमोदित मनुष्योंके कल्याणका मार्ग है।

यह स्रग्धरा छन्द है। इसके प्रत्येक चरणमें ७।७ अक्षरोंपर तीन विराम होते हैं और म SSS र SIS भ SII न III तथा तीन य ISS गणोंकी योजना होती है ॥ २६ ॥

अधम-मध्यम और उत्तमका अन्तर—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥२७॥

अन्वयः—नीचैः विघ्नभयेन न प्रारभ्यते खलु। मध्याः प्रारभ्य विघ्नविहताः सन्तो विरमन्ति। उत्तमजनाः प्रारभ्य च विघ्नैः पुनः पुनः प्रतिहन्यमानाः अपि न परित्यजन्ति ॥

पदार्थ—नीचैः = नीच (अधम प्रकृतिवाले) जनों द्वारा। विघ्नभयेन = विघ्नोंके भयसे। न प्रारभ्यते खलु = (कोई भी कार्य) प्रारम्भ ही नहीं किया जाता। मध्याः = बीचके (जो न उत्तम हैं न अधम, वे) लोग। प्रारभ्य = (कार्यको) प्रारम्भ करके। विघ्नविहताः = विघ्नोंसे सताये हुए। विरमन्ति = छोड़ देते हैं। उत्तमजनाः = श्रेष्ठव्यक्ति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विघ्नैः=विघ्नोंद्वारा । पुनः पुनः=बार-बार । प्रतिहन्यमानाः=पीडित होनेपर भी। प्रारब्धं=प्रारम्भ किये हुए कार्यको । न परित्यजन्ति=नहीं छोड़ते ।

व्याख्या—नीचैः=क्षुद्रजनैः विघ्नभयेन, [विघ्नेभ्यो भयं, तेन]=अन्तरायभीत्या, न प्रारभ्यते=कार्यारम्भो न विधीयते, खलु=निश्चयेन । मध्याः=मध्यमवर्गीयाः, जनाः प्रारभ्य=कार्यमारभ्य, विघ्नविहताः [विघ्नैः विहताः]=प्रत्यवायपीडिताः अन्तःविरमन्ति=कार्यं त्यजन्ति । उत्तमजनाः=धीराः, विघ्नैः=अन्तरायैः, पुनः पुनः=भूयोभूयः, हन्यमानाः=समाक्रान्ताः अपि, प्रारब्धम्=उपक्रान्तं कर्म, न परिज्यजन्ति=न जहति । वसन्ततिलकावृत्तम् । (तल्लक्षणं द्र० १८ श्लोके)।

भावार्थः—उत्तमप्रकृतिर्मनस्वी नरः यत्कार्यं प्रारभते तद्विघ्नानविगणय्य समाप्तिमेव नयति, मध्यमश्च कार्यारम्भं करोति किन्तु विघ्नैर्भग्नोद्यमः सन् मध्य एव कार्यं जहाति, अधमस्तु विघ्नाः भविष्यन्तीति शङ्कया कार्यारम्भमेव न करोति, इति त्रिधा पुरुषप्रकृतिः ।

भाषार्थ—मन्दबुद्धिवाले मनुष्य, विघ्नोंके डरसे पहले किसी कार्यको प्रारम्भ ही नहीं करते हैं । मध्यम-स्वभावके लोग कार्यको आरम्भ करके बीचमें कोई विघ्न आजाय तो उसे छोड़ देते हैं । किन्तु उत्तम विचारवाले धीरजन विघ्नोंसे बार-बार सताये जाने पर भी अपने कार्यसे तनिक पीछे नहीं हटते और उसे पूरा ही करके छोड़ते हैं ॥ २७ ॥

सज्जनताको निभाना कितना कठिन है—

असन्तो नाऽभ्यर्थ्याः, सुहृदपि न याच्यः कृशधनः,
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम् ।
विपद्युच्चैः स्थेयं, पदमनुविधेयं च महतां,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥ २८ ॥

अन्वयः—असन्तो नाभ्यर्थ्याः, कृशधनः सुहृदपि न याच्यः, प्रिया न्याय्या वृत्तिः, असुभङ्गेऽपि मलिनम् असुकरं, विपदि उच्चैः स्थेयं, महतां पदमनुविधेयं च—इदं विषमम्-असिधाराव्रतं सतां केनोद्दिष्टम् ?

पदार्थ—असन्तः=दुर्जनोंसे, न अभ्यर्थ्याः=प्रार्थना न करनी । कृशधनः=कम धनवाला, सुहृद् अपि=मित्र भी, न याच्यः=मांगने योग्य नहीं । प्रिया=जो सबको प्रिय लगे, न्याय्या=न्याययुक्त, वृत्तिः=आजीविका (का आश्रयण किया जाय)। मलिनं=निन्दनीय कर्म, असुभंगे अपि=प्रणान्तकालमें भी, असुकरम्=दुष्कर है । विपदि=आपत्कालमें भी, असुकरम्=दुष्कर है । विपदि=आपत्कालमें (भी), उच्चैः स्थेयं=ऊँचा होकर (दीन बनकर नहीं) रहाजाय, च=और (सदा) महतां=बड़े लोगोंकी, पदं=पद्धतिका, अनुविधेयं=अनुसरण किया जाय, इदं=इस प्रकार, विषमं=कष्टदायक । असिधाराव्रतं=खड्गकी धार जैसा तीक्ष्ण व्रत, सतां=सज्जनोंके लिये, केन उद्दिष्टम्=किसने बता दिया ।

व्याख्या—असन्तः=असज्जनाः, न अभ्यर्थ्याः=न निवेदनीयाः । कृशधनः [कृशं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

१०८२८

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

धनं यस्य सः]=क्षीणवित्तः **सुहृदपि**=सखाऽपि न **याच्यः**=नहि प्रार्थनीयः। **प्रिया**=सन्तोषदायिनी, **न्याय्या**=न्याययुक्ता उचिता वा **वृत्तिः**=जीविका आश्रयणीया। **असुभङ्गे** [असूनाम् भङ्गः, तस्मिन्]=प्राणघाते अपि, **मलिनम्**=निन्दनीयं कार्यम्, **असुकरम्**=दुष्करम्। **विपदि**=आपदि, **उच्चैः**=उन्नतम् यथास्यात्तथा, **स्थेयम्**=भवितव्यम्। **महताम्**=सज्जनानाम्, **पदम्**=पदवी, **अनुविधेयम्**=अनुवर्तितव्या। इति **इदम्**=एतादृशम्, **सताम्**=सत्पुरुषाणाम्, **विषमम्**=क्लेशकरम्, **असिधाराव्रतम्** [असेः धारा असिधारा, असिधारा इव व्रतम्]=खड्गाग्रभाग इव तीक्ष्णतरो नियमः, **केन**=विशिष्टपुरुषेण, **उद्दिष्टम्**=उपदिष्टम्? शिखरिणीवृत्तम्। तल्लक्षणं तु—"**रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी**"।

भावार्थः—खड्गधारमिव तीक्ष्णमेतत् सज्जनानामाचरणं यत् ते खलजनाभ्यर्थनं न कुर्वन्ति, अल्पवित्तं मित्रमपि न याचन्ते, प्रियां न्याययुतां चाजीविकां वर्तयन्ति, प्राणसङ्कटेऽपि 'निन्द्यं' कर्म न कुर्वन्ति, विपद्यपि स्वमहत्त्वं रक्षयन्ति, महाजनपन्थानमनुसृत्य च तिष्ठन्ति।

भाषार्थः—सज्जनोंको इस तलवारकी तेजधारकी तरह तीक्ष्ण (कष्ट दायक) व्रतको किसने बताया है। जिसमें दुष्टोंसे अभ्यर्थना करते एवं निर्धन मित्रोंसे भी (धन इत्यादि) माँगते नहीं बनता। हितकारिणी तथा न्यायोचित जीविकाका सहारा लेना पड़ता है। प्राण भले ही चले जाँय किन्तु निन्दनीय कार्य करना दुष्कर हो जाता है। विपत्तिमें भी ऊँचा स्तर रखना पड़ता है, एव बड़े लोगोंके मार्गका अनुसरण करना पड़ता है।

यह शिखरिणी छन्द है इसमें ६ और ११ पर विराम होता है तथा य ।SS म SSS न ।।। स ।।S भ S।। लघुगुरु ।S ये गण होते हैं॥ २८॥

सज्जन अपनी महत्ताको नहीं खोते—

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्राणोऽपि कष्टां दशा-
मापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलग्रासैकबद्धस्पृहः
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी॥ २९॥

अन्वयः—क्षुत्क्षामोऽपि, जराकृशोऽपि, शिथिलप्राणोऽपि, कष्टां दशामापन्नोऽपि, विपन्नदीधितिरपि, प्राणेषु नश्यत्स्वपि, मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलग्रासैकबद्धस्पृहः, मानमहतामग्रेसरः, केसरी, किम् जीर्णं तृणमत्ति ?

पदार्थ—क्षुत्क्षामः अपि=भूखसे सताया हुआ भी। जराकृशः अपि=बुढ़ापेसे जीर्ण भी। शिथिलप्राणः अपि=बलहीन भी। कष्टां दशां=विपन्न अवस्थाको, आपन्नोऽपि=प्राप्त हुआ भी। विपन्नदीधितिः अपि=क्षीणकान्तिवाला भी। प्राणेषु नश्यत्सु अपि=प्राणोंके निकलनेकी स्थितिमें भी। मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भ=उन्मत्तगजेन्द्रके फाड़े हुए गंडस्थलके, कवलग्रासैकबद्धस्पृहः=कवलको ग्रास करनेकी ... मानमहताम्=... उन्नत

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यक्तियोंमें; अग्रेसरः = अग्रणी। केसरी = सिंह। किं जीर्णं तृणम् अत्ति = क्या सूखी घास खाता है?

व्याख्या—**क्षुत्क्षामः**; [क्षुधा क्षामः] = बुभुक्षया क्षीणोऽपि, **जराकृशोऽपि** [जरया कृशः] = वृद्धतया क्षीणः अपि, **शिथिलप्राणः** [शिथिलाः प्राणाः यस्य सः] = अल्पशक्तिरपि। **कष्टाम्** = क्लेशदायिनीम्, **दशाम्** = अवस्थाम्, **आपन्नोऽपि** = संप्राप्तोऽपि। **विपन्नदीधितिः** [विपन्ना दीधितिः यस्य सः] = नष्टकान्तिरपि। **प्राणेषु** = असुषु, **नश्यत्सु** = विनष्टेषु अपि, **मत्ताः** = मदोन्मत्ताः ये **इभेन्द्राः** = गजश्रेष्ठाः तेषां **विभिन्नाः** = विदारिताः ये **कुम्भाः** = गण्डस्थलानि तेषां **पिशितम्** = मांसम्, तस्य **ग्रासः** = भक्षणं, तस्मिन् **एकम्** = केवलम्, **बद्धा** = संयता, **स्पृहा** = इच्छा यस्य सः। **मानमहताम्** [मानेन महान्तः, तेषाम्] = अभिमानोन्नतानाम् **अग्रेसरः** [अग्रेसरतीति] = अग्रणीः **केसरी** = सिंहः, **जीर्णम्** = शुष्कम्, **तृणम्** = घासम्, **अत्ति** = खादति, किम्? नहि कदापि भक्षयतीत्यर्थः। **शार्दूलविक्रीडितं छन्दः**।

भावार्थः—मानी जनः कृच्छ्रां दशां गतोऽपि स्वमहत्त्वापहारिणीं चेष्टां न करोति। यथा जराजर्जरो मरणासन्नोऽपि सिंहः स्वयं हतैर्गजैरेव स्वाहारक्रियां सम्पादयति नतु तृणभक्षणेन।

भाषार्थ—भूखसे अत्यन्त कृश, बुढ़ापेसे जर्जर शरीरवाला, पराक्रमहीन, असह्य कष्टको प्राप्त, तेजोहीन, मरणासन्न होनेपर भी, मत्त गजराजके फाड़े हुए मस्तकके ही मांसको खानेकी अभिलाषा करनेवाला, स्वाभिमानियोंमें अग्रगण्य सिंह क्या सूखी घास खाता है? अर्थात् कभी नहीं खाता। (जैसे मानी सिंह दुर्दशाग्रस्त और मरणासन्न होनेपर भी घास नहीं खाता, ऐसे ही सज्जन अनेक विपत्ति पड़नेपर भी अपमानजनक कार्य नहीं करता) ॥ २९ ॥

फलकी आकांक्षा भी पुरुषार्थ के अनुरूप होती है—

स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थिकं
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति, न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये।
सिंहो जम्बुकमङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपं, हाथी
सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् ॥३०॥

अन्वयः—श्वा स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमपि अस्थिकं लब्ध्वा परितोषमेति। तु तत् तस्य क्षुधाशान्तये न। सिंहः अङ्कमागतमपि जम्बुकं त्यक्त्वा द्विपं निहन्ति। कृच्छ्रगतोऽपि सर्वो जनः सत्त्वानुरूपं फलं वाञ्छति।

पदार्थ—श्वा = कुत्ता। स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनं = थोड़ीसी आंत तथा चर्बी रहजानेसे मैले। निर्मांसमपि = मांसरहित भी। अस्थिकं = हड्डीके टुकड़ेको। लब्ध्वा = पाकर, परितोषमेति = सन्तुष्ट हो जाता है। तत्तु = वह तो, तस्य = उस (कुत्ते) की, क्षुधाशान्तये = भूख मिटानेके लिये, न = (पर्याप्त) नहीं है। सिंहः = सिंह, अङ्कमागतमपि = गोदमें आये हुए भी, जम्बुकं = सियारको, त्यक्त्वा = छोड़कर, द्विपं = हाथीको, निहन्ति = मारता है। कृच्छ्रगतः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपि = विपत्तिमें पड़े हुए भी। सर्वो जनः = सभी व्यक्ति। सत्त्वानुरूपं = अपने पराक्रमके योग्य, फलं = फलको, वाञ्छति = चाहते हैं।

व्याख्या—श्वा = कुक्कुरः स्वल्पस्नायुवसावशेषमलिनम्, [स्नायुश्च वसाच स्नायुवसे, तयोरवशेषः, स्वल्पश्चासौ स्नायुवसावशेषश्च, तेन मलिनम्] = किंचिदवशिष्टस्नायुवसालेशदूषितम्। निर्मांसमपि = मांसेन रहितमपि, अस्थिकम् = कीकसम् (कुत्सितार्थेऽल्पार्थे वा कन् प्रत्ययः) लब्ध्वा = संप्राप्य, परितोषम् = सन्तोषम्, एति = प्राप्नोति। तु = परम् तत् = कीकसम्, तस्य = शुनः, क्षुधाशान्तये = बुभुक्षावारणाय न (भवति)। सिंहः = केसरी, अङ्कम् = उत्सङ्ग आगतम् = समायातम् अपि जम्बुकम् = शृगालम् त्यक्त्वा = विहाय, द्विपम् = हस्तिनम्, हन्ति = मारयति। कृच्छ्रगतः [कृच्छ्रेषु गतः] = दुःखं गतः अपि सर्वो जनः = निखिलो लोकः, सत्त्वानुरूपम्, [सत्त्वस्य अनुरूपम्] पराक्रमानुकूलम् फलम् = लाभम्, वाञ्छति = अभिलषति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

भावार्थः—सर्वः लोकः स्वस्वसामर्थ्यानुसारमेव स्वां स्वां प्रकृतिमाश्रयन्ति। यथा कुक्कुरः स्वल्पमस्थिमात्रं प्राप्यापि परितुष्यति सिंहस्तु शृगालमाहाराय प्राप्तमपि परित्यज्य गजायैव स्पृहति।

भाषार्थ—कुत्ता, थोड़ीसी आँतें तथा चर्बी लगी रहनेसे गन्दे एवं मांस रहित हड्डीके टुकड़ेको पाकर ही संतोष कर लेता है, यद्यपि उससे उसकी भूख नहीं मिटती। परन्तु सिंह पास आये हुए सियारको भी छोड़कर हाथी को ही मारता है। ठीक ही है—कि विपन्न अवस्थामें भी सब अपने पौरुषके अनुरूप ही फल चाहते हैं॥ ३०॥

उत्तम-अधमका निदर्शन—

लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपातं
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते, गजपुङ्गवस्तु
धीरं विलोकयति, चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ॥३१॥

अन्वयः—श्वा पिण्डदस्य (पुरतः) लाङ्गूलचालनम्, अधश्चरणावपातं, भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनञ्च कुरुते, गजपुङ्गवस्तु धीरं विलोकयति, चाटुशतैश्च भुङ्क्ते।

पदार्थ—श्वा = कुत्ता, पिण्डदस्य = टुकड़ा देनेवाले व्यक्तिके (सामने), लाङ्गूलचालनम् = पूँछ हिलाना, अधः = नीचे (झुककर), चरणावपातं = पैरोंपर गिरना, भूमौ निपत्य = भूमि पर गिरकर, वदनोदरदर्शनं = मुख और पेट दिखाना, कुरुते = करता है। गजपुङ्गवस्तु = गजश्रेष्ठ तो, धीरं = गम्भीर (होकर), विलोकयति = देखता है, च = और, चाटुशतैः = सैकड़ों बार पुकारनेपर, भुङ्क्ते = खाता है।

व्याख्या—श्वा = शुनकः, पिण्डदस्य, [पिण्डं ददातीति, तस्य] = भोजयितुर्जनस्य (पुरतः), लाङ्गूलचालनम्, [लाङ्गूलस्य चालनम्, तत्] = पुच्छविवर्तनम्, अधः =

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
...चैः, चरणावपातम् [चरणयोः अवपातम्]=पादपतनम्, भूमौ=धारण्याम्, ...पत्य=पतित्वा, वदनोदरदर्शनम् [वदनं च, उदरं च तयोः, दर्शनम्]=आस्यजठर-...स्फुटीकरणम्, कुरुते=करोति। गजपुङ्गवः [गजानां गजेषु वा पुङ्गवः]=गजश्रेष्ठः तु ...रं=गम्भीरं यथा स्यात्तथा, विलोकयति=पश्यति (भोजयितारम्), चाटुशतैः= ...प्रार्थनाभिश्च भुङ्क्ते=खादति। वसन्ततिलकावृत्तम्।

भावार्थः—अधमस्वभावो जनः आश्रयदातुः पुरस्तात् श्वेव स्वीये चापल्यं क्षुद्रत्वं च स्फुटीकरोति, उत्तमस्वभावस्तु गजराज इव गम्भीरतां स्वमानित्वं च दर्शयति।

भाषार्थ—कुत्ता भोजन देनेवालेके सामने पूँछ हिलाता है, नीचे चरणोंमें लोटता है, फिर धरती पर गिरकर मुख और पेट दिखाता है, (किन्तु) श्रेष्ठ हाथी अपने स्वामी की ओर गम्भीरतासे देखता है तथा सैकड़ों बार पुचकारने पर भोजन करता है (अर्थात् क्षुद्रमनुष्य कुत्तेकी तरह स्वामीके सामने खानेके लिये अपनी नीचता दिखाता है किन्तु सज्जन गजराजकी भाँति गम्भीर रहता है तथा सम्मान के साथ जीवन बिताता है) ॥ ३१ ॥

जन्मका साफल्य—

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—परिवर्तिनि संसारे को वा न मृतः को वा न जायते। स एव जातः (श्रेष्ठः) ...न जातेन वंशः समुन्नतिं याति।

पदार्थ—परिवर्तिनि=परिवर्तनशील, संसारे=विश्वमें, को वा न मृतः=कौन नहीं ...रा। (और) को वा न जायते=कौन उत्पन्न नहीं होता। स जातः=(वास्तवमें) ...पन्न हुआ वही है। येन जातेन=जिसके उत्पन्न होनेसे। वंशः=कुल, समुन्नतिं याति= ...न्नतिको प्राप्त होता है।

व्याख्या—परिवर्तिनि=परिवर्तनशीले, संसारे=जगति, को वा=पुरुषः, न मृतः= मृत्युमुपगतः तथा को वा पुरुषः, न जायते=न जन्म गृह्णाति। नूनं जना उत्पद्यन्ते ...म्रियन्ते चेति तात्पर्यम्, (किन्तु) सः=पुरुषः जातः=उत्पन्नः, येन जातेन=यस्य जन्मग्रहणेन, वंशः=कुलम्, समुन्नतिम्=उत्कर्षम्, याति=अधिगच्छति, अन्येषां जनानां जन्ममृत्यू वृथैवेति भावः। अनुष्टुप् छन्दः।

भावार्थः—अस्मिञ्जगति जन्म मरणं च प्रतिक्षणं भवत्येव। सर्व एव म्रियते उत्पद्यते च, किन्तु तस्यैव जन्मग्रहणे साफल्यं येन स्वकुलस्योन्नतिः क्रियते।

भाषार्थ—इस परिवर्तनशील संसारमें कौन नहीं मरता तथा कौन नहीं जन्म लेता। किन्तु वस्तुतः उसी मनुष्यका जन्म सफल है जिसके होनेसे वंशकी समुन्नति होती है ॥३२॥

मनस्वीकी दो गतियाँ—

कुसुमस्तवकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य, शीर्यते वन एव वा ॥ ३३ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—मनस्विनः कुसुमस्तवकस्य इव द्वयी वृत्तिः (अस्ति), सर्वलोकस्य मूर्ध्नि (तिष्ठति), वन एव वा शीर्यते ।

पदार्थ—मनस्विनः = मनस्वी (विचारशील, मानी) पुरुषकी, कुसुमस्तवकस्य इव फूलके गुच्छेकी तरह, द्वयी वृत्तिः = दो प्रकारकी स्थिति (होती है) । वा = या तो (वा सर्वलोकस्य = सम्पूर्ण लोगोंके, मूर्ध्नि = मस्तकपर (अग्रगण्यरूपमें) रहता है, वा—अ वने एव = वनमें ही । शीर्यते = क्षीण हो जाता है ।

व्याख्या—मनस्विनः = विचारशीलस्य स्वाभिमानिनः पुरुषस्य कुसुमस्तवक [कुसुमानां स्तवकः, तस्य] = पुष्पगुच्छस्येव, द्वयी = द्विप्रकारा, वृत्तिः = स्थितिः भवा शेषः । सर्वलोकस्य = निखिलजगतः, मूर्ध्नि = मस्तके. वा = अथवा, तिष्ठति, वा = वने = अरण्ये एव शीर्यते = जीर्णो भवति । अनुष्टुब्वृत्तम् ।

भावार्थ—यथा पुष्पगुच्छं देवानामपि मूर्ध्न्येव तिष्ठति, अन्यथा वन एव शीर्णो भ तथैव मनस्वी जनोऽपि जगति सर्वोत्कर्षेण वर्तते यद्वा देहत्यागमेव बहुमन्यते ।

भावार्थ—मनस्वी (स्वाभिमानी) पुरुषकी स्थिति फूलोंके गुच्छेकी तरह दो ही प्रका होती है, फूल या तो सभी लोगोंके मस्तकपर चढ़ता है अथवा वनमें ही झड़ जाता (ऐसे ही मनस्वी भी या तो सबमें अग्रगण्य होकर रहता है अन्यथा नष्ट हो जाता है) ॥३३॥

महान्‌का वैर भी महान्‌से होता है—

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः सम्भाविताः पञ्चषा-
स्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते ।
द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भासुरौ
भ्रातः ! पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषाकृतिः ॥३४॥

अन्वयः—भो भ्रातः! पश्य बृहस्पतिप्रभृतयः अन्येऽपि पञ्चषाः सम्भाविताः स विशेषविक्रमरुचिः शीर्षावशेषाकृतिः दानवपतिः एषः राहुः तान्प्रति न वैरायते । किन्तु भा दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ द्वावेव पर्वणि ग्रसते ।

पदार्थ—हे भ्रातः पश्य = हे भाई देखो । बृहस्पतिप्रभृतयः = बृहस्पति आदि । अपि = अन्य भी । पञ्चषाः = पांच छः । सम्भाविताः = प्रतिष्ठित । सन्ति = (ग्रह) हैं । (कि विशेषविक्रमरुचिः = अत्यन्त पराक्रमकी इच्छा वाला, शीर्षावशेषाकृतिः = शिरः मात्र बच आकृतिमें जिसके ऐसा, एष राहुः = यह राहु । तान् प्रति = उनके प्रति । न वैरायते = वैर रखता । भास्वरौ = चमकते हुए, द्वौ = दो, दिवाकर-निशाप्राणेश्वरौ एव = सूर्य और चन्द्रम ही, पर्वणि = पर्व (अमावस या पूर्णिमा) में । ग्रसते = निगलता है ।

व्याख्या—भ्रातः = हे तात ! पश्य = अवलोकय, बृहस्पतिप्रभृतयः = सुरगुवा पञ्चषाः = पञ्च षड् वा, सम्भाविताः = सम्मान्याः ग्रहाः सन्ति = वर्तन्ते, किन्तु वि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विक्रमरुचिः [विशेषे विक्रमे रुचिः यस्य सः]=बलाधिके शौर्याभिलाषवान्, शीर्षावशेषाकृतिः, [शीर्षम् एव अवशेषः यस्यास्तादृशी आकृतिः यस्यासौ]=मस्तकमात्रावशिष्टस्वरूपः, दानवपतिः [दानवानां पतिः]=दनुजस्वामी एषः=सुप्रसिद्धः, राहुः=एतन्नामको ग्रहः, तान्=बृहस्पत्यादीन् प्रति, न वैरायते=न विरोधं कुरुते (अपि तु) पर्वणि=अमायां पूर्णिमायाञ्च भास्वरौ=दीप्तिमन्तौ, द्वौ=उभौ, दिवाकरनिशाप्राणेश्वरौ [दिवाकरोतीति दिवाकरः, निशायाः प्राणेश्वरः निशाप्राणेश्वरः, दिवाकरश्च निशाप्राणेश्वरश्च, तौ]=सूर्याचन्द्रमसौ, एव=केवलम्, ग्रसते=आक्रमते । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

भावार्थः—पराक्रमशालिन्येव स्वशौर्यं प्रकटयिपुर्मनस्वी कष्टं प्राप्तोऽपि क्षुद्रानुपेक्ष्य महत्स्वेवाक्रमणं करोति । यथा शिरोमात्रावशिष्टोऽपि राहुः बृहस्पत्यादिग्रहेषु सत्स्वपि दीप्यमानौ सूर्याचन्द्रमसावेव पर्वणि ग्रसते ।

भाषार्थ—हे भाई, देखो यद्यपि गुरु इत्यादि अन्य पाँच छः सम्मानित ग्रह हैं किन्तु विशेष पराक्रम दिखानेकी इच्छा करनेवाला दानवराज राहु, जिसका स्वरूप केवल सिर मात्र रह गया है, इनसे कभी विरोध नहीं करता । किन्तु अत्यधिक प्रकाशमान सूर्य और चन्द्रमापर ही अमावस्या या पूर्णिमाको आक्रमण करता है ॥ ३४ ॥

महत्ताका परिमाण नहीं होता—

वहति भुवनश्रेणिं शेषः फणाफलकस्थितां,
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स च धार्यते ।
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा-
दहह ! महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः ॥३५॥

अन्वयः—शेषः फणाफलकस्थितां भुवनश्रेणिं वहति, स च कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा धार्यते । तमपि पयोधिः अनादरात् क्रोडाधीनं कुरुते । अहह ! महतां चरित्रविभूतयः निःसीमानः (भवन्ति) ।

पदार्थ—शेषः=शेषनाग, फणाफलकस्थितां=फणरूपी फलकों (पीढ़ा) पर स्थित, भुवनश्रेणिं=भू आदि लोकोंकी पंक्तिको, वहति=धारण करता है । स च=और वह (शेष), कमठपतिना=कच्छपराजके द्वारा, सदा=निरन्तर, मध्येपृष्ठं=पीठके बीच, धार्यते=धारण किया जाता है । तमपि=उस (कच्छपराज) को भी, पयोधिः=समुद्र, अनादरात्=अवहेलनासे जैसे, क्रोडाधीनं कुरुते=अपनी गोदमें ले लेता है । अहह !=आश्चर्य है, महतां=सज्जनोंकी, चरित्रविभूतयः=चरित्र सम्पदाएँ, निःसीमानःभवन्ति=असीम होती हैं ।

व्याख्या—शेषः=सर्पराजः, फणाफलकस्थिताम्, फणाः=फटा एव फलकम्=दीर्घपट्टिका तस्मिन् स्थिता=वर्तमाना, ताम्, भुवनश्रेणिम् भुवनानाम्=मर्त्यपातालादीनां श्रेणिः=पङ्क्तिः=ताम्, वहति=धारयति, स=शेषनागश्च, कमठपतिना=विष्णोरवतारभूतेन कच्छपाधिराजेन, सदा=सर्वदा मध्येपृष्ठम् [पृष्ठस्य मध्ये इति]=उदरपश्चाद्भागे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri

धार्यते = ध्रियते। तम् = कच्छपराजमपि, पयोधिः = जलधिः, अनादरात् = अनायासमेव क्रोडापीठं कुरुते = भुजान्तराले करोति। अहह = आश्चर्यम् महताम् = महापुरुषाणाम्, चरित्रविभूतयः = कार्यसम्पदः, निःसीमानः, [निर्गता सीमा याभ्यस्ताः] = अपरिमेया भवन्तीत्यर्थः। हरिणीवृत्तम्। (तल्लक्षणं तु ९ श्लोके व्याख्यायां द्रष्टव्यम्)।

भावार्थः—यथा फणासु सकलजगतो भारं धारयन्तं शेषं कूर्मः स्वपृष्ठे वहति तं च कूर्मं जलधिरनायासेन क्रोडीकरोति, एतेन ज्ञायते यत् महत्त्वस्येयत्तां न कोऽपि वर्णयितुं शक्नोति।

भाषार्थ—सर्पराज शेष अपने फणोंके ऊपर पातालमर्त्यादि लोकोंको धारण करता है और उसको कूर्मराज अपनी पीठपर सदा ढोता है। कच्छपराजको भी समुद्र बिना किसी परिश्रमके ही अपनी गोदमें रख लेता है। अहो! महापुरुषोंके कार्यकी महिमा अपार है ॥ ३५ ॥

औचित्यका विचार होना चाहिए—

वरं पक्षच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद्बहलदहनोद्गारगुरुभिः।
तुषाराऽद्रेः सूनोरहह ! पितरि क्लेशविवशे
न चासौ सम्पातः पयसि पयसांपत्युरुचितः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—तुषाराद्रेः सूनोः उद्गच्छद्बहलदहनोद्गारगुरुभिः समदमघवन्मुक्तकुलिशप्रहारैः पक्षच्छेदो वरम्। (किन्तु) अहह ! पितरि क्लेशविवशे (सति) पयसां पत्युः पयसि असौ सम्पातो नोचितः।

पदार्थ—तुषाराद्रेः सूनोः = हिमालयके पुत्र (मैनाक) का। उद्गच्छद्बहलदहनोद्गार-गुरुभिः = निकलते हुए प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाओंसे भयंकर। समदमघवन्मुक्तकुलिशप्रहारैः = उन्मत्त इन्द्रके द्वारा फेंके गये वज्रके प्रहारोंसे, पक्षच्छेदः = पंखोंका कट जाना, वरं = ठीक है (समझमें आता है), (किन्तु) अहह = आश्चर्य है कि, पितरि = पिताके, क्लेशबहुले = दुःखसे भरे होनेपर भी, पयसां पत्युः पयसि = समुद्रके जलमें, असौ सम्पातः = यह डूब जाना, न च वरं = नहीं ठीक है।

व्याख्या—तुषाराद्रेः = हिमगिरेः, सूनोः = तनयस्य मैनाकस्येति भावः। उद्गच्छद्ब-हलदहनोद्गारगुरुभिः, [बहलश्चासौ दहनश्च बहलदहनः, तस्य उद्गाराः, उद्गच्छन्तः ये बहलदहनोद्गाराः, तैः गुरवः तैः] = ऊर्ध्वं प्रस्फुरद्भिर्वह्निज्वालाभिर्गंभीरैः। समदमघवन्मुक्त-कुलिशप्रहारैः [मदेन सह वर्तमान इति समदः, स चासौ, मघवा, तेन मुक्तम् यत् कुलिशम्, तस्य प्रहाराः तैः] = सगर्वेणेन्द्रेण प्रयुक्तैर्वज्राघातैः, पक्षच्छेदः, पक्षाणाम् = गरुताम्, छेदः = विनाशम् वरम् = ईषत्प्रियम्। किन्तु अहह = कष्टम् पितरि = हिमालये क्लेशविवशे = दुःखाभिभूते सति पयसाम् = जलानाम् पत्युः = स्वामिनः सागरस्य, पयसि = पानीये असौ = प्रसिद्धः, संपातः = पतनम्, न च उचितः = नानुकूलः। शिखरिणी छन्दः। (लक्षणं २८ श्लोके द्र०)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावार्थः—स्वबन्नं भूयस्यां विपत्तौ निक्षिप्य स्वात्मनो परिरक्षणं नोचितम्। यथा मैनाकः पर्वतपक्षच्छेदनप्रवृत्तमिन्द्रमवलोक्य स्वपितरं वदन्तं हिमगिरिं विहाय समुद्रे पतितः तत्तस्यानुपयुक्तं कार्यम्।

भावार्थ—हिमालय पर्वतके पुत्र मैनाकके लिए, ऊपर उठती हुई आगकी ज्वालाके कारण असह्य, घमण्डमें चूर इन्द्र द्वारा छोड़े गये, वज्रके आघातसे पंखोंका कट जाना भी उचित था, परन्तु हाय! पिताके आपत्तिग्रस्त होनेपर उसका समुद्रके जलमें कूद पड़ना ठीक नहीं था॥ ३६॥

तेजस्वी अपमान नहीं सह सकते—

यद्चेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते!॥ ३७॥

अन्वयः—अचेतनोऽपि इनकान्तः सवितुः पादैः स्पृष्टः यत् प्रज्वलति, तत् तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते?

पदार्थ—अचेतनः अपि = जड भी। इनकान्तः = सूर्यकान्त (मणि)। सवितुः पादैः = सूर्यकी किरणोंसे, स्पृष्टः = छुआ हुआ। यत् = जब। प्रज्वलति = जल उठता है। तत् = तब, तेजस्वी पुरुषः = तेजस्वी पुरुष। परकृतनिकृतिं = दूसरेके द्वारा किये हुए अपमानको। कथं सहते = कैसे सहता है?

व्याख्या—अचेतनः [नास्ति चेतना यस्य सः] = निर्जीवः अपि इनकान्तः = सूर्यकान्तमणिः, यत् = यस्माद् हेतोः, सवितुः = सूर्यस्य, पादैः = किरणैः चरणैश्च स्पृष्टः = संपर्कं प्राप्तः सन्, प्रज्वलति = दीप्तः कोपयुक्तो वा भवति, तत् = तस्मात्कारणात्, तेजस्वी, [तेजः अस्त्यस्येति तादृशः] पुरुषः = पुरुषार्थी जनः, परकृतनिकृतिम् [परैः कृता या निकृतिः, ताम्] = अन्यकृतामवमाननां, कथम् = केन प्रकारेण, सहते = स्वीकरोति। कदापि तां नोपेक्षते इति भावः। आर्यावृत्तम्।

भावार्थः—जडोऽपि सूर्यकान्तः सूर्यकरस्पर्शेन प्रज्वलन् द्योतते यत् पददलितो भूत्वा न कोऽपि तेजस्वी पराभवं सहमानस्तिष्ठति।

भावार्थ—जब निर्जीव सूर्यकान्त मणि भी सूर्यकी किरणों (चरणों) के स्पर्श होनेसे भभक उठता है, तो (चैतन्य) तेजस्वी पुरुष दूसरोंके द्वारा किये गए अपमानको भला कैसे सहन कर सकता है?॥ ३७॥

तेजस्वितामें अवस्था कारण नहीं—

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां, न खलु वयस्तेजसो हेतुः॥ ३८॥

अन्वयः—शिशुः अपि सिंहः मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु, निपतति, सत्त्ववतामियं प्रकृतिः, वयः तेजसो हेतुः न खलु।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पदार्थ—शिशुः अपि=बालक भी, सिंहः=शेर। मदमलिनकपोलभित्तिषु=मदसे मलिन है गण्डस्थल जिनका (उन्मत्त) ऐसे, गजेषु=हाथियोंपर। निपतति=झपट पड़ता है। इयं=यह। सत्त्ववतां=बलशालियोंकी, प्रकृतिः=स्वभाव ही है। वयः=अवस्था, तेजसो हेतुः=तेजस्विताका कारण, न खलु=नहीं होती है।

व्याख्या—शिशुः=पृथुकः, अत्यल्पवयस्क इति यावत्, अपि सिंहः=केसरी, मदमलिनकपोलभित्तिषु [मदेन=दानेन, मलिनाः कपोलभित्तयः येषां तेषु,] दानकषायितगण्डस्थलेषु गजेषु=नागेषु, निपतति=समाक्रामति। इयम्=विक्रमदर्शनरूपा प्रकृतिः=स्वभावः सत्त्ववताम्=पराक्रमशालिनाम् खलु=निश्चयेन (अस्ति, अतएव) वयः=अवस्था तेजसः=प्रतापस्य, हेतुः=कारणं न भवति। आर्या वृत्तम्।

भावार्थः—सत्त्ववान् जनो रिपुमुन्मूल्यैव शान्ति लभते। तेजो हि न वयः सापेक्षं भवति, तत्तु तस्य स्वभाविको धर्मः, यथा सिंहः शिशुत्वेऽपि गजमाक्रम्य स्वशौर्यं दर्शयति।

भाषार्थ—सिंह बच्चा होनेपर भी काले कपोलवाले हाथियोंपर टूट पड़ता है। यह ठीक ही है, शत्रुओंपर आक्रमण करना बलवानोंका स्वभाव ही होता है। अतः अवस्था तेजस्वितामें कारण नहीं होती ॥ ३८ ॥

धनकी महिमा—

जातिर्यातु रसातलं, गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छतां-
च्छीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं;
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥ ३९ ॥

अन्वयः—जातिः रसातलं यातु, गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छतात्। शीलं शैलतटात्पततु, अभिजनो वह्निना सन्दह्यतां, शौर्ये वैरिणि आशु वज्रं निपततु। (किन्तु) नः केवलमर्थोऽस्तु। येन एकेन विना इमे समस्ता गुणाः तृणलवप्रायाः (सन्ति)।

पदार्थ—जातिः=ब्राह्मणत्व-क्षत्रियत्व आदि। रसातलं यातु=रसातलको जावे। गुणगणः=गुणों (दया-दाक्षिण्यादि) का समूह। तस्यापि=उस रसातलसे भी। अधो गच्छतात्=नीचे जावे। शीलं=स्वभाव। शैलतटात्=पहाड़की चोटीसे। पततु=गिरे। अभिजनः=कुलीनता। वह्निना=आगसे। सन्दह्यतां=जलजाय। शौर्ये वैरिणि=पराक्रम रूप शत्रुपर। आशु=शीघ्र ही। वज्रं निपततु=वज्र गिर जावे। नः तु=हमारे पास तो। केवलं=केवल। अर्थोऽस्तु=धन होवे। येन एकेन विना=जिस एक (धन) के विना। इमे समस्ताः गुणाः=ये सभी गुण। तृणलवप्रायाः=तिनकेके टुकड़े जैसे हैं।

व्याख्या—जातिः=विप्रत्वादिः, रसातलम्=पातालम्, यातु=गच्छतु। गुणगणः=धैर्यादिगुणसमूहः, ततोऽपि=तस्मादपि, अधः=नीचैः, गच्छतात्=प्रयाणं करोतु। शीलम्=सदाचारः शैलतटात्=[शैलानां तटस्तस्मात्]=गिरिप्रान्तभागात्, पततु=

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

रयतु। अभिजनः=कुलम्, वह्निना=हुताशनेन सम्प्रदह्यताम्=भस्मीभवतु। वैरिणि=पौ, शौर्ये=विक्रमे, आशु=झटिति, वज्रम्=कुलिशम्, निपततु, किन्तु अर्थः=त्तम् नः=अस्माकम् केवलम्=एकमेव अस्तु=भवतु। येन एकेन=विशिष्टेन धनेन, विना=अन्तरेण, इमे=पूर्वोक्ताः समस्ताः गुणाः=जात्यादिगुणाः [सकला अपि] तृणलवप्रायाः=घासवत् निरर्थकास्तुच्छाश्च भवन्ति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

भावार्थः—जगति धनस्यैव सर्वत्र प्राधान्यं वर्तते, जात्यादयो गुणाः न कथमपि धनाभावे शोभन्ते। अतः सर्वैर्धनमेवार्जनीयम्।

भाषार्थ—जाति (ब्राह्मणत्वादि) पातालको चली जाय, गुणों (दयादाक्षिण्यादि) का समुदाय उससे भी नीचे चला जाय, सदाचार पर्वतके किनारेसे गिरकर चूर-चूर हो जाय, शत्रुके समान शौर्यपर वज्रपात हो जाय। इस प्रकार ये सभी भले ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाँय किन्तु केवल धन हमारे पास हो, जिसके बिना ये सभी गुण तुच्छ तृणके समान नगण्य हो जाते हैं॥ ३९॥

> तानीन्द्रियाण्यविकलानि, तदेव नाम,
> सा बुद्धिरप्रतिहता, वचनं तदेव।
> अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव,
> स्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्॥४०॥

अन्वयः—अविकलानि तानि इन्द्रियाणि, तदेव नाम, अप्रतिहता सा बुद्धिः, तदेव वचनम्, अर्थोष्मणा विरहितः स एव तु पुरुषः, क्षणेन अन्यो भवति, एतद्विचित्रम्।

पदार्थ—अविकलानि=बिना किसी न्यूनताके। तानि=वे ही। इन्द्रियाणि=इन्द्रियाँ हैं। तदेव नाम=वही नाम है। सा=वही। अप्रतिहता=कुण्ठित न होनेवाली। बुद्धिः=बुद्धि है। तदेव=वही। वचनं=वाणी है। किन्तु। अर्थोष्मणा=धनकी गर्मीसे। विरहितः=हीन हुआ। सोऽपि पुरुषः=वही पुरुष भी। क्षणेन=क्षणमात्रमें। अन्य एव भवति=दूसरासा हो जाता है। एतत् विचित्रम्=यह आश्चर्य है।

व्याख्या—अविकलानि [न विकलानीति]=विकाररहितानि संयतानीति यावत्, तानि=प्रसिद्धानि, इन्द्रियाणि=कर्णचक्षुरादीनि, तदेव=पूर्वप्रसिद्धमेव नाम=नामधेयम्, अप्रतिहता [न प्रतिहता]=अकुण्ठिता सा=पूर्ववत् बुद्धिः=मतिः, तदेव=पूर्ववदेव, वचनम्=वाणी, परन्तु अर्थोष्मणा, [अर्थस्य उष्मा, तेन]=धनमदेन, विरहितः=हीनः, सोऽपि=पूर्वपरिचितः अपि पुरुषः=जनः, क्षणेन=निमेषेण, अन्य एव=पूर्वदशातो भिन्न एव, भवति=संजायते, इत्येतत्=पूर्वोक्तं सर्वमपि, विचित्रम्=आश्चर्यजनकम्, प्रतीतिविषयः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

भावार्थः—इन्द्रियादिषु यथापूर्वं वर्तमानेष्वपि यदि धनं पार्श्वे नास्ति चेत् तर्हि मनुष्यो विचित्रामेव काञ्चिद्दशामनुभवति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri
भावार्थ—पहलेकी भाँति ही ये सब इन्द्रियाँ रहती हैं, वही नाम रहता है, वही अ
ण्ठित बुद्धि रहती है, वही वाणी रहती है; किन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि मनुष्य धन
गर्मीके समाप्त होनेपर क्षणभरमें ही दूसरा सा दीख पड़ता है ॥ ४० ॥

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः, स श्रुतवान्, गुणज्ञः।
स एव वक्ता, स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ ४१ ॥

अन्वयः—यस्य वित्तमस्ति, स नरः कुलीनः, स पण्डितः, स श्रुतवान्, गुणज्ञः, स
वक्ता, स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।

पदार्थ—यस्य वित्तम् अस्ति = जिसके (पास) धन है, स नरः = वह व्यक्ति, कुलीनः =
ऊँचे कुलका, स पण्डितः = वही पण्डित, स श्रुतवान् = वही शास्त्रोंका मर्मज्ञ, गुणज्ञः = गु
ग्राही, स एव वक्ता = वही बोलनेवाला, स च दर्शनीयः = और वही रूपवान् (समझा जात
है)। सर्वे गुणाः = सभी गुण। काञ्चनम् = सुवर्णके (अर्थात् धनके)। आश्रयन्ति =
आश्रित हैं।

व्याख्या—यस्य = जनस्य (समीपे) वित्तम् = द्रव्यम्, अस्ति = वर्तते, स नरः =
मनुष्यः, कुलीनः = श्रेष्ठकुलोत्पन्नः, सः = जनः, पण्डितः = प्राज्ञः, सः श्रुतवान् [श्रुतम् =
शास्त्रमस्यास्ति–इति तादृशः] = विद्वान्, स गुणज्ञः, [गुणान् जानातीति] स एव वक्ता =
वाग्मी, स च दर्शनीयः = द्रष्टुं योग्यो भवति। सर्वे = कुलीनत्वादयो गुणाः काञ्चनम् =
हिरण्यं धनं वा, आश्रयन्ति = अवलम्ब्य तिष्ठन्ति। उपजातिवृत्तम्।

भावार्थः—कुलीनता, विद्वत्त्वं, शास्त्रज्ञ-गुणज्ञते, वाग्मिता, रूपवत्त्वं च साम्प्रतं धनाढ्
धने एव लोकैः मन्यते, सर्वगुणसम्पन्नोऽपि निर्धनः नादरं लभते, धनिकस्य नैकगुणोऽ
गुण्यते।

भावार्थ—इस संसार में जिसके पास धन है वही श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न, वही बुद्धिमान्
वही शास्त्रोंका वेत्ता, वही गुणोंको जानने वाला, वही बोलनेमें चतुर तथा वही पुरुष दर्श
के योग्य समझा जाता है, (इससे लगता है कि) सभी गुण धनमें ही निवास करते हैं ॥४१॥

कौन किससे नष्ट होता है—

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति, यतिः सङ्गात्सुतो लालना-
द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः, स्नेहः प्रवासाश्रया—
न्मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥४२॥

अन्वयः—नृपतिः दौर्मन्त्र्यात् विनश्यति, यतिः सङ्गात्, सुतो लालनात्, विप्रः अनध्यय
नात्, कुलं कुतनयात्, शीलं खलोपासनात्, समृद्धिः अनयात्, धनं प्रमादात् त्यागात्
विनश्यति)।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पदार्थ—नृपतिः=राजा, दौर्मन्त्र्यात्=बुरी मन्त्रणासे। यतिः=संन्यासी, सङ्गात्=आसक्तिसे। सुतः=पुत्र, लालनात्=लाड़प्यारसे। विप्रः=ब्राह्मण, अनध्ययनात्=न पढ़नेसे। कुलं=वंश, कुतनयात्=कुपुत्रसे, शीलं=स्वभाव, खलोपासनात्=दुर्जनोंकी सेवासे। ह्रीः=लज्जा, मद्यात्=मद्यके सेवनसे। कृषिः=खेती, अनवेक्षणात्=न देखनेसे। स्नेहः=प्रेम, प्रवासाश्रयात्=परदेशमें रहनेसे। च=और, मैत्री=मित्रता, अप्रणयात्=स्नेह न होनेसे। समृद्धिः=उन्नति, अनयात्=अन्यायसे। धनं=धन, प्रमादात् त्यागात्=असावधानीसे व्यय करनेसे. विनश्यति=नष्ट होता है।

व्याख्या०—नृपतिः=राजा दौर्मन्त्र्यात्=[दुष्टो मन्त्रः दुर्मन्त्रः, तस्य भावः दौर्मन्त्र्यम्, तस्मात्]=दुर्मन्त्रसेवनादिति यावत्, यतिः=संन्यासी, सङ्गात्=जनसम्पर्कात्, सुतः=पुत्रः, लालनात्=विशेषस्नेहात्, विप्रः=ब्राह्मणः, अनध्ययनात्=वेदशास्त्राद्यध्ययनाभावात्, कुलम्=वंशः, कुतनयात्=[कुत्सितः तनयः कुतनयस्तस्मात्]=कुपुत्रात्, शीलम्=सदाचारः, खलोपासनात्=दुष्टजनसेवनात्, ह्रीः=लज्जा, मद्यात्=सुरापानात्, कृषिरपि=हलकृष्टक्षेत्रमपि, अनवेक्षणात्=पुनः पुनरदर्शनात्, स्नेहः=प्रेम, प्रवासाश्रयात्=परदेशनिवासात्, मैत्री=मित्रता, अप्रणयात्=प्रेमाभावात्, समृद्धिः=ऐश्वर्यम्, अनयात्=नीतिविपरीताचरणात्, धनम्=वित्तं च, त्यागात्प्रमादात्=अनवधानतापूर्वकव्ययात्, विनश्यति=विनाशमुपयाति। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

भावार्थः—राज्ञा सन्मंत्रणा कार्या, यतिना आसक्तिः परिहार्या, पुत्रस्यातिलालनमनुचितम्, विप्रेणाध्ययनं कर्तव्यं, सुपुत्रेण वंशोन्नतिर्भवति, शीलं रक्षितुकामश्चेत् दुर्जनसङ्गतिस्त्याज्या, मद्यसेवनान्निर्लज्जो भवति, कृषिः पुनः पुनरवेक्षणीया भवति, स्नेहार्थिना चिरं प्रवासे न स्थेयम्, मैत्रीसंरक्षणार्थं स्नेहवृद्धिः कार्या, समृद्धिकामैर्नीतिरनुसर्तव्या, धनं रक्षितुकामैश्च कुपात्रेभ्योऽप्रमत्तैर्भाव्यमिति तात्पर्यार्थः।

भाषार्थः—अनुचित मंत्रणा करनेसे राजा, जनसम्पर्कसे योगी, अधिक दुलार करनेसे पुत्र, अध्ययन (वेद आदिका) न करनेसे विप्र, कुपुत्रसे कुल, दुष्टोंके साहचर्यसे सदाचार, मदिरा पीनेसे लज्जा, बार-बार न देखनेसे खेती, परदेश (बहुत दूर) रहनेसे स्नेह, प्रेम न रहनेसे मित्रता, अनीतिसे ऐश्वर्य, एवं व्यय करनेमें असावधानीसे धन विनष्ट हो जाता है॥ ४२॥

धनकी तीन दशाएँ—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति॥ ४३॥

अन्वयः—वित्तस्य-दानं भोगो नाशः [इत्येवं] तिस्रः गतयः भवन्ति। यो न ददाति, न च भुङ्क्ते तस्य (धनस्य) तृतीया गतिः भवति।

पदार्थ—वित्तस्य=धनकी दानं भोगो नाशः=दान, भोग और नाश, तिस्रो गतयः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri
भवन्ति = ये तीन अवस्थायें होती हैं। यः जो, न ददाति = न तो देता है, न भुङ्क्ते = न भोग करता है, तस्य = उसके (वित्तकी), तृतीया गतिर्भवति = तीसरी दशा (नाशरूपा) होती है।

व्याख्या—धनस्य = वित्तस्य, दानम् = सत्पात्रेभ्यो वितरणम्, भोगः = स्वकीय-सुखायोपभोगः, नाशः = स्वसमीपान्निर्गमनञ्च इति, तिस्रः = त्रिप्रकाराः गतयः = दशाः, भवन्ति = जायन्ते, यः = पुरुषः, धनं = वित्तम्, न ददाति = दानं न करोति, न वा भुङ्क्ते = स्वयं वा न खादति, तस्य = तदीयधनस्य, तृतीया = अवशिष्टा विनाशस्वरूपा, गतिः = परिणामः, भवति = सङ्घटते। आर्यावृत्तम्।

भावार्थः—धनं दातव्यं भोक्तव्यं च, अन्यथा चौर्यादिना तस्य नाशो भवति।

भाषार्थ—धनकी देना, उपभोग करना और नष्ट हो जाना, ये ही तीन अवस्थायें होती हैं। जो मानव न दान करता है और न उपभोग ही करता है उसके धनकी तीसरी दशा ही होती है अर्थात् नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥

दान करके दरिद्र होना भी गौरव है—

मणिः शाणोल्लीढः, समरविजयी हेतिदलितो,
मदक्षीणो नागः, शरदि सरितः श्यानपुलिनाः।
कलाशेषश्चन्द्रः, सुरतमृदिता बालवनिता,
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु जनाः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—शाणोल्लीढः मणिः, हेतिदलितः समरविजयी, मदक्षीणो नागः, शरदि श्यानपुलिनाः सरितः, कलाशेषश्चन्द्रः, सुरतमृदिता बालवनिता, अर्थिषु गलितविभवा जनाः च [एते] तनिम्नाऽपि शोभन्ते।

पदार्थ—शाणोल्लीढः = सानपर खरादा हुआ, मणिः = रत्न। हेतिदलितः = अस्त्रोंसे घायल, समरविजयी = युद्ध जीता हुआ योद्धा। मदक्षीणो नागः = मदजल (अधिक) झरनेसे दुबलाया हुआ हाथी। शरदि = शरद्ऋतुमें, श्यानपुलिनाः = सूखे तटोंवाली, सरितः = नदियाँ। कलाशेषः चन्द्रः = एक कला मात्र जिसकी बच गई है, ऐसा चन्द्रमा। सुरतमृदिता = रतिकालमें मसली हुई [शिथिल शरीरवाली], बालवनिता = मुग्धा स्त्री। अर्थिषु = याचकोंको देनेमें। गलितविभवाः = व्यतीत हुआ है धन जिसका ऐसे, जनाः = व्यक्ति। तनिम्ना = कृशतासे, शोभन्ते = शोभित होते हैं।

व्याख्या—शाणोल्लीढः [शाणे उल्लीढः] = रत्नादितीक्ष्णीकरणास्त्रविशेषे घृष्टः, मणिः = रत्नम्। हेतिदलितः [हेतिभिः दलितः] = आयुधविक्षतः समरविजयी [समरे विजयी] = युद्धलब्धजयश्रीकः। मदक्षीणः [मदेन क्षीणः] = दानजलनिर्गमनेन कृशः, नागः = कुञ्जरः। शरदि = शरदृतौ, श्यानपुलिनाः [श्यानानि पुलिनानि यासां ताः] = शुष्कतटाः, सरितः = वाहिन्यः। कलाशेषः = कलामात्रेणावशिष्टः, चन्द्रः = राकेशः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुरतमृदिता [सुरते मृदिता]=रतिकाले शिथिलीकृतदेहा, बालवनिता=मुग्धा नारी। अर्थिषु=याचकेषु, गलितविभवाः, [गलितः विभवः येषां ते]=क्षीणवित्ताः नराः=मनुष्याश्च। एते=पूर्वोक्ताः सर्वे=निखिलाः, तनिम्ना [तनोः भावः, तेन,]=कृशत्वेन, शोभन्ते=भान्ति। शिखरिणी वृत्तम्।

भावार्थः—प्रायः महत्त्वेनैव सर्वं शोभते, किन्तु शाणोल्लीढमणिप्रभृतयोऽर्थिसात्कृतविभवान्तास्तु कृशत्वेनैव राजन्ते, तनुत्वमेवैतेषामलङ्करणमित्यर्थः।

भाषार्थ—सान पर चढ़ाया गया रत्न, शस्त्रोंसे घायल किया गया युद्धविजेता, मदसे क्षीण हाथी, शरद ऋतुमें सूखे हुए तटोंवाली सरिता, रतिके समय ढीली पड़ी हुई नवयौवना स्त्री तथा याचकोंको धन देनेसे निर्धन हुआ मनुष्य, ये सभी कृशतामें ही अधिक शोभा पाते हैं॥ ४४॥

परिस्थितिके अनुसार ही वस्तुका लाघव या गौरव होता है—

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये,
स पश्चात्सम्पूर्णः कलयति धरित्रीं तृणसमाम्।
अतश्चानैकान्त्याद् गुरुलघुतयाऽर्थेषु धनिना-
मवस्था वस्तूनि प्रथयति च, सङ्कोचयति च॥ ४५॥

अन्वयः—कश्चित् परिक्षीणः यवानां प्रसृतये स्पृहयति, स एव पश्चात् सम्पूर्णः सन् धरित्रीं तृणसमां कलयति। अतश्च अर्थेषु अनैकान्त्यात्, धनिनाम्, गुरुलघुतया [धनिनाम्] अवस्था वस्तूनि प्रथयति च, संकोचयति च।

पदार्थ—कश्चित् परिक्षीणः=कोई निर्धन, यवानां प्रसृतये=जौकी मुट्ठीके लिये, स्पृहयति=तड़पता है। स पश्चात्=वही बादमें, सम्पूर्णः (सन्)=धनी होनेपर, धरित्रीं=पृथ्वीको, तृणसमां=तिनके जैसी, कलयति=समझता है। अतश्च=इसलिये, अर्थेषु=पदार्थोंमें, अनैकान्त्यात्=अनियतता होने से, गुरुलघुतया=(पदार्थोंका) हलका या भारी होनेसे, (महत्त्वपूर्ण या तुच्छ होनेसे)। धनिनाम् अवस्था=धनवानोंकी परिस्थिति ही, वस्तूनि=वस्तुओंको, प्रथयति=बढ़ाती है, च=और, सङ्कोचयति=सङ्कुचित करती है।

व्याख्या—कश्चित्=कोऽपि मानवः, परिक्षीणः=निर्धनः सन्, यवानाम्=धान्यविशिष्टानाम्, प्रसृतये=अर्धाञ्जलये, स्पृहयति=वाञ्छति। पश्चात्=किञ्चित्कालानन्तरम्, सः=धनहीनः पुरुषः, संपूर्णः=धनेन परिपूर्णः सन्, धरित्रीम्=वसुधाम्, तृणसमाम्=तृणतुल्याम् तुच्छामिति यावत्, कलयति=मनुते। अतः=अस्मात्, अर्थेषु=धनेषु, अनैकान्त्यात् [एकान्तस्य भाव इत्यैकान्त्यम्, न ऐकान्त्यमिति, तस्मात्] अनियतरूपेण विद्यमानत्वादिति, गुरुलघुतया=महत्तरत्वेन क्षुद्रत्वेन च कारणेन, धनिनाम्=वित्तशालिनाम्, अवस्था=उत्तमा अधमा वा स्थितिः, वस्तूनि=पदार्थान् प्रथयति च=गुरूकरोति वा, सङ्कोचयति=लघूकरोति च-इति यावत्। शिखरिणी छन्दः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावार्थः—कस्मिंश्चिदपि वस्तुनि गुरुत्वं लघुत्वं वा नियतं नास्ति, जनानामवस्थाप्रभा… तेषां महत्त्वं वर्धते क्षीयते वा।

भाषार्थः—कोई निर्धन व्यक्ति केवल आधी मँजुरी जौके लिये लालायित रहता है।… फिर धनी होने पर सम्पूर्ण संसारको सूखी घासके समान तुच्छ समझता है। (इसलिये… वस्तुओंको महत्ता और लघुताके विषयमें व्यवस्था ठीक न होनेसे धनियोंकी अवस्था… पदार्थोंको बड़ा और छोटा बनाती है ॥ ४५ ॥

प्रजापालनसे ही सर्वार्थसिद्धि—

राजन् ! दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां,
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे,
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ॥ ४६ ॥

अन्वयः—राजन् ! यदि एतां क्षितिधेनुं दुधुक्षसि, तेन अद्य वत्समिव अमुं लोकं पुषाण… तस्मिंश्च सम्यग् अनिशं परिपोष्यमाणे सति भूमिः कल्पलता इव नानाफलैः फलति।

पदार्थ—राजन् ! यदि, एतां क्षितिधेनुं = इस पृथ्वीरूप गायको। दुधुक्षसि = दुहना… चाहते हो। तेन = तबतो। वत्सम् इव = बछड़ेकी तरह। अमु लोकं = इस लोक (प्रजा) को… पुषाण = पुष्ट करो। तस्मिंश्च = क्योंकि इस लोकके। अनिशं = निरन्तर। सम्यक् = अच्छी… प्रकार। परिपोष्यमाणे = पुष्ट किये जानेपर। भूमिः = पृथ्वी। कल्पलता इव = कल्पलताकी… तरह। नानाफलैः = विभिन्न प्रकारके फलोंसे। फलति = समृद्ध होती है।

व्याख्या—हे राजन् = नृपते ! यदि = चेत् (त्वं) एताम् = विशिष्टाम् क्षितिधेनुम्… [क्षितिर्धेनुरिव, ताम्] गोतुल्यां धराम् दुधुक्षसि = दोग्धुमिच्छसि। तेन = तदा। अद्य = … अधुना, वत्समिव = तर्णकं यथा, अमुम् = एनम्, लोकम् = प्रजाम्, पुषाण = परिपालय। तस्मिन् = प्रजावर्गे च, अनिशम् = निरन्तरम्, सम्यक् = पूर्णरूपेण, परिपोष्यमाणे = … परिपालिते सति, भूमिः = अचला, कल्पलतेव = कल्पव्रततीव, नानाफलैः = नैकप्रकारकैः… फलैः सस्यादिभिरिति यावत्, फलति = अभीष्टं फलं ददाति, समृद्धिमुत्पादयति वा। वसन्त… तिलका वृत्तम्।

भावार्थः—यथा वत्सेषु पोष्य पुष्टीकृतेष्वेव गौर्दुग्धं वितरति तथैव रत्नगर्भायाः भुवः समृद्धि… रभिलष्यते चेत् तर्हि प्रजा सम्यग्रक्षणीया। प्रजाजनेषु सुखितेष्वेव राज्ञा कृष्यादि फल… लब्धुं शक्यते।

भाषार्थ—हे राजन् ! यदि तुम इस धरती रूपी गायको दुहना चाहते हो तो इस समय… बछड़ेके समान इस प्रजावर्गका पूर्णतया पालन-पोषण करो। (क्योंकि) प्रजाका निरन्तर परि… पालन करनेसे ही वसुन्धरा कल्पलता की तरह अनेक प्रकारके फलोंको प्रदान करती है ॥ ४६ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजनीतिकी वेश्यासे तुलना—

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चाऽर्थपरा वदान्या ।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च,
वाराङ्गनेव नृपतीतिरनेकरूपा ॥४७॥

अन्वयः—सत्या अनृता च, परुषा प्रियवादिनी च, हिंस्रा दयालुरपि च, अर्थपरा वदान्या, नित्यव्यया, प्रचुरनित्यधनागमा च । इत्थं—नृपनीतिः वाराङ्गनेव अनेकरूपा भवति ।

पदार्थ—नृपनीतिः = राजाकी नीति । वाराङ्गना इव = वेश्याकी तरह । सत्या = यथार्थ (सत्य) बोलनेवाली । अनृता = और अयथार्थ (झूठ) बोलनेवाली । परुषा = कठोर । प्रियवादिनी च = और मधुर बोलनेवाली । हिंस्रा = घातक । दयालुरपि = और कृपावर्ती भी । अर्थपरा = धनकी लोभी । वदान्या च = और उदार । नित्यव्यया = नित्य व्ययवाली । प्रचुरनित्यधनागमा च = और नित्य बड़ीमात्रामें धन कमाने वाली । (इस प्रकार) अनेकरूपा = बहुतसे रूपोंवाली होती है ।

व्याख्या—(कदाचित्) सत्या = यथार्थरूपा, (कदाचित्) अनृता = असत्यस्वरूपा, परुषा = कठोरा, प्रियवादिनी च = मृदुभाषिणी च, हिंस्रा = हिंसामयी, दयालुः = कृपालुः, अपि च = किञ्च, अर्थपरा = धनपरायणा, वदान्या = बहुप्रदा च, नित्यव्यया [नित्यं व्ययः यस्याः सा, तादृशी] प्रचुरनित्यधनागमा [प्रचुरः नित्यं धनागमः यस्याः सा] = नित्यलब्धबहुवित्ता च, एवं प्रकारेण नृपतीतिः = राजनीतिः वाराङ्गना = गणिका इव = वेश्या, अनेकरूपा [अनेकानि रूपाणि यस्याः सा] = विभिन्न-रूपवती भवतीति शेषः । वसन्ततिलका छन्दः ।

भावार्थ—यथा वेश्या स्वार्थसाधनाय कदाचित्सत्यं वदत्यसत्यं च, परुषं ब्रवीति मधुरं च, कोपना भवति दयालुश्च, कृपणा भवत्युदारा च, स्वसज्जायें नित्यं व्ययशीला सती प्रत्यहं धनार्जनसक्ता च तिष्ठति एवमेव राजभिरपि अवसरं समीक्ष्य व्यवहारः कर्तव्यः ।

भाषार्थ—कभी सत्य, कभी असत्य, कभी कठोर तथा कभी मधुर बोलनेवाली, कभी हिंसक प्रवृत्तिवाली तो कभी करुणासे युक्त, कभी धन-लोलुप, कभी उदार, नित्य व्यय करनेवाली एवं निरन्तर अत्यधिक धन संचित करने वाली वेश्याकी भाँति राजनीति भी अनेक रूपों को धारण करती है (अर्थात् जैसे वेश्या समय और पात्रके अनुसार झूठ-सत्य, मधुर तथा कठोर वचनोंका प्रयोग करती है एवं जैसे वह कभी भी स्थिर चित्तवाली नहीं होती ठीक वैसे ही राजाओंकी नीति भी देश काल और पात्रके अनुसार विभिन्न रूपोंमें बदलती जाती है वह कभी भी स्थिर मार्गवाली नहीं होती है) ॥४७॥

राजाओंके छ गुण—

आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां,
दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः,

कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥४८॥

अन्वयः—आज्ञा, कीर्तिः, ब्राह्मणानां पालनं, दानं, भोगः मित्रसंरक्षणं च, एते षड्गु येषां न प्रवृत्तास्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण कोऽर्थः ?

पदार्थ—आज्ञा=शासनकरना। कीर्तिः=यश (प्राप्तकरना)। ब्राह्मणानां पाल ब्राह्मणोंका पालन करना। दानं=दान करना। भोगः=ऐश्वर्यका उपभोग करना। च और। मित्रसंरक्षणं=मित्रों का संरक्षण करना। एते षड्गुणाः=ये ६ गुण। येषां न प्र =जिन्होंने नहीं सीखे। तेषां=उनका। पार्थिवोपाश्रयेण=राजाके आश्रित रहनेसे। को =क्या लाभ है।

व्याख्या—आज्ञा=शासनम्, कीर्तिः=यशः, ब्राह्मणानाम्=विप्राणाम्, पा =पोषणम्, दानम्=धनादिवितरणम्, भोगः=सम्पत्त्युपभोगः, मित्रसंरक्षणम् [मि णाम् संरक्षणम्]=सुहृद्भ्यः साहाय्यकरणम्, एते=अमी पूर्वं प्रतिपादिताः, षट्= संख्याकाः गुणाः=सद्गुणाः, येषाम्=जनानाम्, मध्ये न प्रवृत्ताः=न हि सन्ति (त तेषाम्=तादृशानाम्, पार्थिवोपाश्रयेण [पार्थिवानाम् उपाश्रयेण]=राज्ञां संसे कोऽर्थः=किं प्रयोजनं, नहि कोऽपीत्यर्थः। शालिनी वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा-मात्तौ चेच्छालिनी वेदलोकैः।

भावार्थ—राज्ञामेते षड्गुणा भवन्ति आज्ञादयः। येश्च राजोपाश्रितैः एते गुणा न शि तास्तेषां तदुपाश्रयणं व्यर्थमेव।

भाषार्थ—जिन्होंने शासन करना, यश उपलब्ध करना, विप्रोंका परिपालन करना, दा देना, सम्पत्तिका उपभोग करना तथा मित्रों की रक्षा करना—ये छः गुण नहीं सीखे उन राजाके आश्रयमें रहनेसे क्या लाभ ?

यह शालिनी छन्द है। इसमें ४ तथा ७ अक्षरों पर विराम होता है और म SSS दो SSI और दो गुरु SS ये गण होते हैं ॥४८॥

भाग्यके अनुसार ही धन मिलता है—

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं,
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम्।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः,
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ॥४९॥

अन्वयः—धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा यद् धनं, तत् मरुस्थलेऽपि नित प्राप्नोति, ततोऽधिकं मेरौ [अपि] न [प्राप्नोति] तद्धीरो भव, वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृ मा कृथाः, पश्य घटः कूपे, पयोनिधावपि, तुल्यं जलं गृह्णाति।

पदार्थ—धात्रा=विधाता द्वारा। निजभालपट्टलिखितं=अपने कपाल फलकपर (भाग्य

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
लिखा हुआ, स्तोकं महद्वा=थोड़ा या अधिक, यद्धनम् अस्ति=जो धन है। तत्=उसे। नितरां=अवश्य ही। मरुस्थलेऽपि=रेगिस्तान में भी। प्राप्नोति=(मनुष्य) प्राप्त करता है। ततः अधिकं=उससे अधिक, मेरौ (अपि) न=मेरु पर्वत पर (जो कि सारा सुवर्णका है) जाकर भी नहीं (पा सकता)। तत्=इसलिये, धीरो भव=(हे मानव!) धैर्य धारण करो। वित्तवत्सु=धनिकोंके सामने, वृथा=व्यर्थ ही, कृपणां वृत्तिं=दीन व्यवहारको, मा कृथाः=मत करो। पश्य=देखो। घटः=घड़ा, कूपे=कुएँपर, पयोनिधौ अपि=(अथवा) समुद्रमें भी, तुल्यं गृह्णाति=बराबर (उतना ही) जल ग्रहण करता है।

व्याख्या—धात्रा=परमेष्ठिना, **निजभालपट्टलिखितम्**, [निजं यद् भालपट्टं, तस्मिन् लिखितम्] स्वीयभालफलके उट्टङ्कितम्, **स्तोकम्**=अल्पम्, **महद्**=प्रचुरं वा यद् धनम् वित्तम् (अस्ति=वर्तते) तत्=तावन्मात्रम्, धनमिति यावत्, (जनः) **मरुस्थले**=जलहीनमरुभूमौ अपि, **नितराम्**=अवश्यमेव **प्राप्नोति**=लभते, ततः=विधिलिखिताद्धनात्, **अधिकं**=अतिशयम्, **मेरावपि**=हेममये पर्वतेऽपि न **प्राप्नोति**=न लभते, **तत्**=तस्माद्धेतोः (हे मनुष्य!) **धीरः**=धैर्यवान्, **भव**=जायस्व, **वित्तवत्सु**=धनिकेषु, **कृपणाम्**=दीनाम् **वृत्तिम्**=व्यवहारम्, **वृथा**=व्यर्थमेव, **मा कृथाः**=मा कार्षीः, **पश्य**=अवलोकय, **घटः**=कलशः, **कूपे**=अन्धौ, **पयोनिधौ**=[पयसाम् निधिः, तस्मिन्]=जलधावितियावत्, **अपि**, **तुल्यम्**=स्वाकारपरिमितं, **जलम्**=पानीयम्, **गृह्णाति**=आदत्ते न त्वधिकमिति। **शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्**।

भावार्थ—पूर्वकर्मानुसारं भाग्ये यावद्धनं लिखितं स्यात् तत्कथमपि लभ्यत एव, ततोऽधिकं तु प्रयत्नशतैरपि दुष्प्रापम्, इति निश्चितप्रायम्। यथा घटं कूपे प्रक्षिप्यतां सागरे वा तत्र तावदेव जलं समेष्यति यावत्तस्य परिमितिः। अतः धनिकानां पुरतः व्यर्थमेव दैन्यं न प्रदर्शनीयम्।

भाषार्थ—विधाताने जिस मनुष्यके भाग्यमें जो कुछ भी न्यून या अधिक धन लिख दिया है उसे मनुष्य मरुस्थलमें भी प्राप्त कर सकता है और उससे अधिक यदि वह चाहे तो स्वर्णमय सुमेरु पहाड़पर भी नहीं पा सकता। इसलिये हे मनुष्य! धैर्यशाली बनो तथा धनिकोंके सामने दीन बननेकी व्यर्थ कोशिश मत करो। देखो, घड़ेको कुँएमें डालो या समुद्रमें वह उतना ही पानी लायगा जितना उसका आकार है।

महान् व्यक्ति प्रार्थनाकी प्रतीक्षा नहीं करते—

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः।
किमम्भोदवराऽस्माकं कार्पण्योक्तिं प्रतीक्षसे? ॥५०॥

अन्वयः—अम्भोदवर! त्वमेव चातकाधारोऽसि इति केषां गोचरः न? (अतः) अस्माकं कार्पण्योक्तिं किं प्रतीक्षसे? (शीघ्रं देहि)।

पदार्थ—अम्भोदवर=हे मेघश्रेष्ठ! त्वमेव=तुम ही, चातकाधारः असि=चातकोंके आधार हो, इति=यह, केषां गोचरः न=कौन नहीं जानता? (फिर) अस्माकं=हमारे, कार्पण्योक्तिं=दीन वचनोंको, किं प्रतीक्षसे=प्रतीक्षा क्यों करते हो?

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

व्याख्या—हे अम्भोद ! [CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri], तत्संबुद्धौ]=हे पयोद ! त्वमेव चातकाधारः [चातकानाम्=सारङ्गानां पक्षिणाम्, आधारः=अवलम्बः] असि=वर्तसे, इति=एवम्, केषाम्=मनुष्याणाम्, न गोचरः=न हि ज्ञातम्। सर्वे एव जानन्तीति भावः। तत्=तस्मात्कारणात्, अस्माकम्=नः, कार्पण्योक्तिम्=दीनतामयीं वाणीम्, किम्=कस्मै प्रयोजनाय, प्रतीक्षसे=प्रतीक्षां करोषि; अनुपालयसीत्यर्थः। अनुष्टुप्छन्दः।

भावार्थः—जगज्जानाति यत् चातको मेघवृष्टमेव जलं पिबतीति, पुनः मेघेन तत्प्रार्थनस्य प्रतीक्षा किं करणीया ? येन महता ज्ञायते इमे मदाश्रिता इति, तेन तेषां प्रार्थनामनपेक्ष्यैव तदभिलाषः पूरणीयः।

भावार्थः—हे श्रेष्ठ मेघ ! यह कौन नहीं जानता कि केवल तुम्हीं चातकोंके एक मात्र आधार हो। फिर भी तुम मेरे दीन वचनोंकी प्रतीक्षा क्यों वृथा ही करते हो ? (हम लोगोंके तुम्हीं एक मात्र आश्रय हो अतः याचना करनेके पूर्व ही तुम्हें हम लोगोंके अभीष्टकी पूर्ति कर देनी चाहिये। क्योंकि जो दाता बिना याचकके माँगे ही अभीष्ट प्रदान करता है वही महान् माना जाता है। अन्यथा उसका कोई महत्त्व नहीं होता) ॥५०॥

जिस किसी के सामने दीनता प्रकट करना उचित नहीं—

रे रे चातक ! सावधानमनसा मित्र ! क्षणं श्रूयता-
मम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ॥५१॥

अन्वयः—रे रे चातक ! मित्र ! (त्वया) सावधानमनसा क्षणं श्रूयतां, गगने बहवोऽम्भोदा वसन्ति (किन्तु) सर्वेऽपि एतादृशा न (सन्ति। यतः) केचित् वृष्टिभिः वसुधाम् आर्द्रयन्ति, केचित् च वृथा गर्जन्ति। [अतः] यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो दीनं वचः मा ब्रूहि।

पदार्थ—रे रे ! चातक !=हे मित्र पपीहे ! सावधानमनसा=स्वस्थ चित्तसे, क्षणं श्रूयताम्=थोड़ी देर सुनो। गगने=आकाशमें, बहवः अम्भोदाः=बहुतसे मेघ। वसन्ति=रहते हैं। (किन्तु) सर्वेऽपि=सभी, एतादृशा न=ऐसे (दयालु) नहीं होते। केचिद्=कुछ तो। वृष्टिभिः=वर्षासे, वसुधां=पृथ्वीको। आर्द्रयन्ति=भिगो देते हैं। केचिद् वृथा गर्जन्ति=कुछ व्यर्थ ही गरजते हैं। यं यं पश्यसि=जिस जिस (मेघ) को देखते हो। तस्य तस्य पुरतः=उस-उसके सामने। दीनं वचः=दीन वाणी। मा ब्रूहि=मत बोलो।

व्याख्या—रे रे मित्र !=हे हे सुहृत्, चातक=सारङ्ग (त्वया), सावधानमनसा=अवहितेन चित्तेन, क्षणम्=स्तोककालमेव, श्रूयताम्=समाकर्ण्यताम्, मदीया वार्ता इति यावत्। गगने=वियति, बहवः=नैके, अम्भोदाः [अम्भः=जलम्, ददति=वर्षन्ति, इति ते] वसन्ति=तिष्ठन्ति परं सर्वेऽपि=मेघाः, एतादृशाः=ईदृशाः दयालव इति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावः। न=नहि सन्ति। (तत्र) केचन=मेघाः, वसुधाम्=पृथिवीम्, वृष्टिभिः=जल-वर्षणैः, आर्द्रयन्ति=क्लेदयन्ति, तु केचित्=अपरे पयोदाः, वृथा=व्यर्थमेव गर्जन्ति=उद्घोषन्ते। अतः त्वं यं-यम्=मेघम्, पश्यसि=अवलोकयसि, तस्य-तस्य=सर्वस्य पयोदस्य, पुरतः=पुरस्तात्, दीनम्=कृपणां, वचः=वाणीं, मा ब्रूहि=मा वद। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

भावार्थ—यथा चातकैराकाशे मेघमात्रं दृष्ट्वा जलं न प्रार्थनीयं यतोहि केषुचिन्मेघेषु जलं भवति केचिच्च व्यर्थमेव गर्जनं कुर्वन्ति न तु वर्षणम्, तथैव याचकैरपि धनाशया यः कोऽपि दाता नार्थयितव्यः परीक्ष्यैव स्वाभिप्रायः प्रकाशनीय इति।

भाषार्थ—हे मित्र पपीहे! तुम सावधानीसे जरा मेरी बात सुनो। आकाशमें अनेक बादल रहते हैं परन्तु सभी एक समान कृपा करनेवाले नहीं होते। उनमें कुछ तो वर्षासे धरतीको गीली कर देते हैं और कुछ व्यर्थ ही केवल गरजते हैं। इसलिये तुम जिस-किसी मेघको देखकर ही उनके सामने अपनी दीन प्रार्थना न करो। [इस संसारमें तरह तरह के लोग होते हैं। उनमें कुछ तो थोड़ा धन देकर गरीबोंकी सहायता कर भी देते हैं किन्तु कुछ व्यर्थ ही शेखी बघारते हैं। इसलिये मनुष्यको अनुकूल दाताको पाकर अपनी करुण कहानी कहनी चाहिये अन्यथा अनर्गल जिस किसीसे प्रार्थना करने पर कोई लाभ नहीं होता] ॥५१॥

दुर्जनका लक्षण—

अकरुणत्वमकारणविग्रहः,
परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता,
प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥५२॥

अन्वयः—अकरुणत्वम् अकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा। सुजनबन्धुजनेषु असहिष्णुता। हि इदं दुरात्मनाम् प्रकृतिसिद्धम् (अस्ति)।

पदार्थ—अकरुणत्वम्=निर्दयता। अकारणविग्रहः=बिनाकारण झगड़ा, परधने परयोषिति च=दूसरेके धन और स्त्रीमें, स्पृहा=लालसा। सुजनबन्धुजनेषु=सज्जनों तथा बान्धवों के प्रति, असहिष्णुता=असहनशीलता। इदं=ये बातें। दुरात्मनाम्=दुर्जनोंके लिये, प्रकृतिसिद्धम्=स्वभावसिद्ध हैं।

व्याख्या—अकरुणत्वम्=[नास्ति करुणा यस्यासौ अकरुणः तस्य भावः]=निर्दयता, अकारणविग्रहः [अकारणं यथास्यात्तथा विग्रहः]=वृथैव कलहः, परधने [परस्य धन-मिति, तस्मिन्]=अन्यदीये वित्ते, परयोषिति [परस्य योषित्, तस्याम्]=परकीयायां स्त्रियाम् च, स्पृहा=अभिलाषः, सुजनबन्धुजनेषु [सुजनाः=महापुरुषाः, बन्धुजनाः=स्वपारिवारिकाश्च, तेषु] असहिष्णुता=असहनशीलता ईर्ष्येति भावः, हि=निश्चयेन, इदम्=एतत्सर्वम्, दुरात्मनाम् [दुष्टः-आत्मा येषां, तेषाम्]—दुष्टानाम्, प्रकृतिसिद्धम्, [प्रकृत्या सिद्धम्]=नैसर्गिकमस्तीति शेषः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri
भावार्थः—दुर्जनाः स्वभावेन एव निर्दयाः, अकारणकलहप्रियाः, परधनपरस्त्रीलोलुपाः सज्जनानां स्वबान्धवादीनां चोत्कर्षमसहमाना भवन्ति, य एवं भवति स दुर्जन इत्यभिप्रायः।

भावार्थ—निष्ठुरता, बिना किसी कारण के ही झगडा करना, दूसरेके धन और स्त्री प्राप्त करनेकी इच्छा करना, सज्जनों तथा बन्धु-बान्धवोंके साथ ईर्ष्या भाव; ये सभी दुर्गुण खल मनुष्योंमें स्वभावसे ही विद्यमान रहते हैं ॥५२॥

दुर्जनकी त्याज्यता—

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ? ॥५३॥

अन्वयः—दुर्जनः विद्यया अलङ्कृतोऽपि सन् परिहर्तव्यः। मणिना भूषितः सर्पः असौ किम् न भयङ्करः ?

पदार्थ—दुर्जनः=खल व्यक्ति, विद्यया=विद्यासे, अलंकृतः सन् अपि=विभूषित होता हुआ भी, परिहर्तव्यः=त्याज्य है। मणिना भूषितः=(मस्तक पर) मणिसे अलंकृत, असौ सर्पः=यह साँप, भयङ्करः न किम्=भयङ्कर नहीं होता क्या ?

व्याख्या—विद्यया=वेदशास्त्रादिज्ञानेन अलंकृतः=विभूषितः, सन्नपि=भवन्नपि दुर्जनः=खलः, (सर्वजनैः) परिहर्तव्यः=परित्याज्यः। मणिना=रत्नेन, शिरःस्थितेनेति यावत्, भूषितः=समलङ्कृतः, अपि असौ=पूर्वोक्तगुणयुक्तः, सर्पः=भुजङ्गः किम् भयङ्करः [भयंकरोतीति]=भीतिदायकः न भवति ? भवत्येवेति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम्।

भावार्थः—कश्चिद् दुर्जनः "अयं विद्वानस्तीति" नोपसर्पणीयः, यतोहि विद्वत्त्वेन तस्य स्वभावपरिवर्तनं तु न जातम्। यथा फणास्थ मणिना शोभितोऽपि सर्पस्तु सर्प एव, स मणि लोभात्तत्र गमनादवश्यमेव दक्ष्यन्ति।

भावार्थ—दुर्जन व्यक्ति अनेक विद्याओंसे विभूषित हों, तब भी उनसे संसर्ग नहीं रखना चाहिये फणमें मणि जडी होनेपर भी क्या विषधर सर्प भयङ्कर नहीं होता ? अर्थात् अवश्य होता है ॥ ५२ ॥

दुर्जनोंद्वारा गुणोंमें दोषत्वारोप—

जाड्यं ह्रीमति गण्यते, व्रतरुचौ दम्भः, शुचौ कैतवं,
शूरे निर्घृणता, मुनौ विमतिता, दैन्यं प्रियालापिनि ।
तेजस्विन्यवलिप्तता, मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे,
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः ॥५४॥

अन्वयः—[दुर्जनैः—] ह्रीमति जाड्यं गण्यते। व्रतरुचौ दम्भः [गण्यते], शुचौ कैतवं, शूरे निर्घृणता, मुनौ विमतिता, प्रियालापिनि दैन्यं, तेजस्विनि अवलिप्तता, वक्तरि मुखरता, स्थिरे अशक्तिः (गण्यते)। तत् गुणिनां सः को नाम गुणः—यो दुर्जनैर्न अङ्कितः भवेत् ?।

पदार्थ—ह्रीमति=लज्जाशीलमें, जाड्यं=मूढता। व्रतरुचौ=नियमादिमें रुचिवालेमें

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

दम्भः=पाखण्ड । शुचौ=पवित्रतासे रहनेमें, कैतव=धूर्तता । शूरे=पराक्रमीमें, निर्घृणता=क्रूरता । मुनौ=मननशीलमें, विमतिता=बुद्धिहीनता । प्रियालापिनि=प्रिय बोलनेवालेमें, दैन्यं=दीनता । तेजस्विनि=तेजस्वीमें, अवलिप्तता=घमंडीपन । वक्तरि=बोलनेवालेमें, मुखरता=वाचालता । स्थिरे=शान्तमें, अशक्तिः=असामर्थ्य । गण्यते=कही जाती है । तत्=इसलिये । गुणिनां=गुणवानोंका । को नाम गुणः=कौनसा गुण है । यः=जो । दुर्जनैः=खलों द्वारा । अङ्कितः न भवेत्=कलङ्कित नहीं होता ।

व्याख्या—ह्रीमति [ह्रीः अस्त्यस्मिन्निति ह्रीमान्, तस्मिन्]=लज्जाशीले, जाड्यम् [जडस्य भावः]=मन्दता, व्रतरुचौ [व्रते रुचिः यस्य स व्रतरुचिः, तस्मिन्]=उपवासादिप्रवृत्तियुक्ते, दम्भः=पाखण्ड इति । शुचौ=पवित्रे, कैतवम्=धूर्तता इति, शूरे=वीरपुरुषे निर्घृणता=निर्दयता, मुनौ=विरक्ते, विमतिता [विगता मतिर्यस्य स विमतिः, तस्य भावः]=निर्बुद्धित्वम् । प्रियालापिनि [प्रियमालपतीति, तस्मिन्]=मधुरवक्तरि, दैन्यम्=दीनता, तेजस्विनि=ओजस्विपुरुषे, अवलिप्तता=गर्वितता, वक्तरि=भाषणशीले, मुखरता=वावदूकत्वम्, स्थिरे=स्थिरचित्ते, अशक्तिः=असामर्थ्यम्, गण्यते=संभाव्यते, तत्=तर्हि, गुणिनाम्=सद्गुणवतां जनानाम्, सः कः=विशिष्टो, नाम=नामकः, गुणो भवेत्=स्यात्, यः=गुणः, दुर्जनैः=[दुष्टाश्च ते जनाः, तैः] खलैः, न=नहि, अङ्कितः=दूषितः, अपि तु सर्व एव कलङ्कितो भवतीति शेषः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

भावार्थः—दुर्जनाः सज्जनानां लज्जाशीलत्वादिषु गुणेष्वपि जडत्वादीन् दोषानेवारोपयन्ति । न कोपि गुणः यस्तैर्न कलङ्क्यते ।

भाषार्थ—दुष्ट मनुष्य लज्जालु पुरुषमें मूर्खता, व्रतादिमें अभिरुचि रखनेवालोंमें पाखण्ड, विशुद्ध चरितवालेमें कपट, पराक्रमी पुरुषोंमें निर्दयता, मुनिमें मतिहीनता, मीठे वचन बोलनेवालोंमें दीनता, प्रतिभाशाली व्यक्तिमें अभिमानी, अच्छे वक्तामें वकवादी एवं गम्भीर पुरुषोंमें सामर्थ्यहीनताका दोषारोपण करते हैं, तो फिर गुणवानोंका वह कौन सा विशेष गुण है जिसमें इन खलोंने दोष न निकाला हो ॥ ५४ ॥

हेय और उपादेयका उपदेश—

लोभश्चेदगुणेन किं, पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः,
सत्यं चेत्तपसा च किं, शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं गुणैः, सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः,
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥५५॥

अन्वयः—लोभश्चेत् (तदा) गुणेन किं, यदि पिशुनता अस्ति (तदा) पातकैः किं, सत्यं चेत्तदा तपसा च किं, यदि शुचि मनः, अस्ति (तदा) तीर्थेन किं, यदि सौजन्यम् (अस्ति तदा) गुणैः किं, यदि महिमा अस्ति (तर्हि) मण्डनैः किं, यदि सद्विद्या अस्ति (तर्हि) धनैः किम्, यदि अपयशोऽस्ति (तर्हि) मृत्युना किम् ?

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri

पदार्थ—लोभः चेत्=(मनुष्योंमें) लोभ होता है, (तो) अगुणेन किं=दुर्गुणोंको (खोजना)। यदि पिशुनता अस्ति=चुगुलखोरी है तो। पातकैः किम्=पापोंसे क्या। सत्यं चेत्=यदि सत्य है तो, तपसा किं=तपस्यासे क्या, करना। यदि मनः शुचि अस्ति=यदि मन पवित्र है तो, तीर्थेन किं=तीर्थसे क्या। सौजन्यं यदि=सज्जनता है तो, मण्डनैः=अलंकरणोंसे क्या। यदि सद्विद्या=यदि अच्छी विद्या है तो, धनैः किं=धनसे क्या। यदि अपयशः=यदि दुष्कीर्ति है तो, मृत्युना किं=मृत्युसे क्या?

व्याख्या—**लोभः**=लोलुपता, **चेत्**=यदि (अस्ति तर्हि), **अगुणेन**=दोषेण, **किम्**=किं प्रयोजनं, (तस्यैव निखिलदोषागारत्वात्)। **यदि**=चेत्, **पिशुनता**=खलता, **अस्ति**=वर्तते (तर्हि) **पातकैः**=पापकर्मभिः, **किम्**=(तस्या एव पापकारणत्वात्)। **सत्यम्**=तथ्यम्, **चेत्**=यदि **अस्ति** विद्यते, तदा, **तपसा**=तपश्चर्यया, **किम्**=को लाभः तस्य तपोरूपत्वात्। **यदि**=चेत्, **शुचि**=विशुद्धम्, **मनः**=स्वान्तमस्ति तर्हि, **तीर्थेन**=काशी बदरिकादियात्रया **किम्**=किं फलम्, (मनस एव परमतीर्थत्वात्)। **यदि**=चेत् **सौजन्यम्**=सज्जनता **अस्ति**=विद्यते, तदा **गुणैः**=दयादाक्षिण्यादिभिः, **किम्**=को लाभ (सौजन्यस्यैव विशेषगुणत्वात्)। यदि **सुमहिमा**=शोभनं गौरवम् **अस्ति**=वर्तते, तर्हि **मण्डनैः**=आभूषणैः किम् न कोऽपि लाभ इत्यर्थः, (तस्यैव श्रेष्ठालङ्करणत्वात्)। यदि **सद्विद्या**=शोभनं वेदशास्त्रादिज्ञानम् **अस्ति**=विद्यते, तदा, **धनैः**=वित्तैः, **किम्**, (विद्यया सर्वधनसम्भवात्)। यदि च, **अपयशः**=अपकीर्तिः **अस्ति**=वर्तते तर्हि, **मृत्युना**=मरणेन **किम्**=किं फलम् न हि किमपि प्रयोजनमिति तात्पर्यम्। **शार्दूलविक्रीडितं छन्दः**।

भावार्थः—लोभात्परो न कोऽपि दुर्गुणः, पैशुन्यमुच्चतमं पातकं, सत्यं परमं तपः, मनसः शुचित्वं तीर्थादधिकं पुण्यदं, सुजनता सर्वगुणैरधिकं श्लाघ्या, महत्त्वं स्वरूपसौन्दर्यादधिकं, सद्विद्या प्रधानं धनम्, अकीर्तिश्च मृत्योरधिककष्टप्रदा, अतो लोभादिकं विहाय सत्यादि ग्राह्यं विदुषा सर्वदैव।

भाषार्थ—यदि मनुष्यमें लोभ हो तो अन्य किसी दुर्गुणकी क्या आवश्यकता? यदि दुर्जनता हो तो अन्य पाप करनेसे क्या कार्य? यदि सत्य है तो अन्य तपस्या क्यों करे, यदि मन ही निर्मल है तो तीर्थ सेवनसे क्या लाभ? यदि सज्जनता हो तो अन्य गुणोंसे क्या करना? यदि यश हो तो अन्य आभूषण धारण करनेसे क्या लाभ? यदि सद्विद्या हो तो धनसे क्या प्रयोजन? तथा यदि अपयश है तो फिर मरनेकी क्या आवश्यकता? (अर्थात् लालच, कृपणता और अपयश इत्यादि अवगुणों को मनुष्यको छोड़ना चाहिए, एवं सत्यता, मनकी शुद्धि तथा अच्छी विद्या आदि सद्गुणों को ग्रहण करना चाहिए)॥ ५५॥

शशी दिवसधूसरो, गलितयौवना कामिनी,
सरो विगतवारिजं, मुखमनक्षरं स्वाकृतेः।
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो,
नृपाङ्गणगतः खलो, मनसि सप्त शल्यानि मे॥ ५६॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—दिवसधूसरः शशी, गलितयौवना कामिनी, विगतवारिजं सरः, स्वाकृतेः अनक्षरं मुखं, धनपरायणः प्रभुः, सततदुर्गतः सज्जनः, (एतानि) मे मनसि सप्त शल्यानि [सन्ति]।

पदार्थ—दिवसधूसरः = दिनमें (सूर्यके तेजसे) धूसर (क्षीणकान्तिवाला), शशी = चन्द्रमा। गलितयौवना = जिसका तारुण्य बीत चुका हो ऐसी, कामिनी = सुन्दरी (स्त्री)। विगतवारिजं = नष्ट हो गये हैं कमल जिसके ऐसा, सरः = तालाब। स्वाकृतेः = सुन्दर आकृतिवाले (व्यक्ति) का, अनक्षरं मुखं = अक्षरशून्य मुख। धनपरायणः प्रभुः = धनका लोभी स्वामी। सततदुर्गतः सज्जनः = निरन्तर दुर्गतिमें पड़ा हुआ सज्जन। नृपाङ्गणगतः = राजदरबारमें पहुँचवाला, खलः = दुर्जन। सप्त = ये सात। मे मनसि = मेरे मनमें, शल्यानि = कांटे हैं।

व्याख्या—**दिवसधूसरः** [दिवसे धूसरः] = दिवाक्षीणकान्तिः, **चन्द्रः** = सुधांशुः, **गलितयौवना** [गलितं यौवनं यस्याः सा] अपगततारुण्या, **कामिनी** = नारी। **विगतवारिजम्** [विगतानि, वारिजानि यस्मात्तत्] = कमलरहितं **सरः** = सरसी, **स्वाकृतेः** [सुष्ठु, आकृतिः = यस्य सः स्वाकृतिः तस्य] = रूपवतः, **अनक्षरम्** = विद्याहीनम्, **मुखम्** = आस्यम्, **धनपरायणः** [धने परायणः] = वित्ततत्परः, लुब्धः, **प्रभुः** = स्वामी, **सततदुर्गतः** [सततं दुर्गतः] = सदैव दुःखावस्थां प्राप्त इतियावत्, **सज्जनः** = महापुरुषः, **नृपाङ्गणगतः**, [नृपस्य अङ्गणं नृपाङ्गणं, तस्मिन् गतः] = राजसभां, सम्प्राप्तः, **खलः** = दुष्टजनः-इत्येतानि, **सप्त** = सप्तसंख्याकानि, **मे** = मम, **मनसि** = स्वान्ते, **शल्यानि** = शङ्कवः, असह्यकष्टप्रदानीति भावः। सन्तीति शेषः। **पृथ्वी छन्दः**।

भावार्थः—यः पूर्वमतितरां राजते स एव पश्चात् संस्मरणीयशोभश्चेद्दुःखकरो भवति-यथा दिवाचन्द्रः, नष्टतारुण्या सुन्दरी, विगतवारिजं सरः, एवमेव यत्रैका कश्चिन्महान्गुणस्तत्रैव गुणान्तराणामभावोऽपि दुःखमुत्पादयति यथा रूपवति निरक्षरता, अधिकारिणो लुब्धत्वं, सज्जनानां निर्धनत्वम्, राजसभायां खलप्रवेशः।

भाषार्थ—दिनके समय धूमिल चाँद, यौवनसे रहित स्त्री, कमलहीन तालाब, रूपवान् व्यक्तिका विद्याविहीन मुख, धनका लालची स्वामी, निरन्तर दुर्दशामें पड़ा हुआ सत्पुरुष एवं राजाके आँगन (दरबार) में पहुँचा हुआ दुर्जन—ये सात मेरे मनमें कीलकी भाँति चुभते हैं ॥ ५६ ॥

क्रोधसे हानि—

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम्।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—चण्डकोपानां भूभुजां कश्चिदात्मीयो नाम न (अस्ति)। पावकः जुह्वानं होतारमपि स्पृष्टः [चेत्] दहति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पदार्थ—चण्डकोपानां = प्रचण्ड क्रोधवाले, भूभुजां = राजाओंका, आत्मीयोनाम = अपना व्यक्ति (हितैषी), न कश्चित् = कोई नहीं होता। पावकः = अग्नि, स्पृष्टः = छुआ हुआ जुह्वानं = हवन करते हुए, होतारमपि = होता (यज्ञमें पुरोहित) को भी, दहति = जला देता है।

व्याख्या—चण्डकोपानाम् [चण्डः कोपो येषां ते चण्डकोपाः, तेषां] = अतिशयक्रोधवतां, भूभुजाम् = भूपालानाम्, कश्चिदपि = कोऽपि जनः, आत्मीयो नाम = आत्मीयत्वेन प्रसिद्धः, (नास्ति = न विद्यते)। (यतः) पावकः = वह्निः, स्पृष्टः = स्पर्शविषयतां गतः, सन् = भवन्, जुह्वानम् = हवनं कुर्वाणम्, होतारम् = एतन्नामधेयमृत्विजम्, अपि, दहति = सन्तापयति। अनुष्टुप्छन्दः।

भावार्थः—तीक्ष्णप्रकृतीनां राज्ञां न कोऽपि आत्मीयो भवति, यतो हि तेभ्यः सर्वो बिभेत्येव यथा होमेन प्रीणयतोऽपि होतुः करः स्पृष्टे सति वह्निना दह्यत एव। अतः राज्ञा चण्डकोपेन न भाव्यम्।

भाषार्थ—उग्र क्रोधी राजाओंका कोई भी व्यक्ति अपना नहीं होता है। हवन करते हुए होता को भी आग विना जलाए नहीं छोड़ती ॥५७॥

सेवककी कठिनता—

मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा,
धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा, दूरतश्चाऽप्रगल्भः।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाऽभिजातः,
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥५८॥

अन्वयः—मौनात् मूकः, प्रवचनपटुः चेत् वातुलः जल्पको वा, [यदि] पार्श्वे वसति च तदा धृष्टः, दूरतश्च अप्रगल्भः, क्षान्त्या भीरुः, यदि न सहते प्रायशो न अभिजातः। (अतः) परमगहनः सेवाधर्मः योगिनामप्यगम्यः (अस्ति)।

पदार्थ—मौनात् = (सेवकके) चुप रहनेसे, मूकः = गूंगा है (ऐसा)। प्रवचनपटुः = चतुराईसे बोलनेपर, वातुलः = वातूनी, जल्पको वा = अथवा बड़बड़ानेवाला है (ऐसा)। सदा पार्श्वे वसति = निरन्तर पासमें रहने पर, धृष्टः = ढीठ है (ऐसा)। दूरतश्च = दूर रहनेसे, अप्रगल्भः = प्रतिभाहीन है (ऐसा)। क्षान्त्या = क्षमाशील होनेपर, भीरुः = डरपोक है (ऐसा)। यदि न सहते = यदि (बातको) नहीं सहता (प्रत्युत्तर देता है) तो, अभिजातः न = कुलीन नहीं है। (ऐसा कहा जाता है, अतः), सेवाधर्मः = सेवाधर्म, परमगहनः = अत्यन्त गम्भीर है (जो) योगिनामपि = योगियोंके लिये भी, अगम्यः = अज्ञेय है।

व्याख्या—(मनुष्यः) मौनात् = तूष्णींभावात्, मूकः = वाणीहीनः, प्रवचनपटुः [प्रवचने पटुः] = अधिकभाषणे कुशलः, वातुलः = प्रलापी जल्पकः = वाचालो वा, (यदि सः) पार्श्वं = समीपे, वसति = तिष्ठति (तदा) धृष्टः = अविनीतः, यदि च, दूरतः =

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal.

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
दूरेऽवतिष्ठते, तर्हि, अप्रगल्भः = प्रतिभाहीनः, क्षान्त्या = क्षमया, भीरुः = भीतः, यदि = चेद, न सहते = न मर्षयति तदा प्रायशः = बाहुल्येन, नाभिजातः = अकुलीनः (इति कथ्यते), अतः = अस्मात् कारणात्, परमगहनः = अत्यन्त गूढः सेवाधर्मः = परिचर्याकर्म, योगिनाम् = त्रिकालज्ञानां महात्मनामपि, अगम्यः = न विज्ञातुं योग्यः, अस्तीति शेषः। मन्दाक्रान्ता छन्दः।

भावार्थ—सेवकेन स्वामिनो मनस्तोषः कथं करणीय इति सम्यक्तया वेत्तुं न कोऽपि प्रभवति, यदि सेवकः उचितानुचितं न वदति चेत् मूकोऽयं, वदति चेद्वावदूकोऽयं, समीपे स्थितश्चेन्निर्लज्जोऽयं दूरे तिष्ठति चेदव्यवहारज्ञोऽयं, वार्तां सहते चेदभीरुर्नसहते चेदनार्यः इत्यारोपास्तस्मिन् क्रियन्ते।

भाषार्थ—(सेवक) चुपचाप काम करनेपर गूँगा, बात-चीत करनेमें कुशल होनेपर बातूनी, पासमें रहनेपर ढीठ, दूर रहनेपर अव्यावहारिक, क्षमा करनेपर कायर, एवं किसीकी बात न सहनेपर नीच कहा जाता है। सचमुच ही सेवाका कार्य बड़ा दुस्तर होता है, जिसे योगी भी नहीं जान सकते ॥५८॥

उद्भासिताऽखिलखलस्य विशृङ्खलस्य
प्राग्जातविस्तृतनिजाऽधमकर्मवृत्तेः।
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य
नीचस्य गोचरगतैः सुखमाप्यते कैः ॥५९॥

अन्वय—उद्भासिताखिलखलस्य विशृङ्खलस्य प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः दैवात् अवाप्तविभवस्य गुणद्विषः अस्य नीचस्य गोचरगतैः कैः सुखमाप्यते।

पदार्थ—उद्भासिताखिलखलस्य = सम्पूर्ण दुर्जनोंको प्रेरित करनेवाले। विशृङ्खलस्य = उच्छृङ्खल। प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः = पहिले किए हुए विस्तृत अपने नीच कर्मोंको व्यवहारमें लानेवाले। दैवात् = भाग्यसे, अवाप्तविभवस्य = धन कमाये हुए। गुणद्विषः = गुणोंसे द्वेष करनेवाले। अस्य नीचस्य = इस नीच (दुर्जन) के। गोचरगतैः = सामने पड़े हुए, कैः = किन (पुरुषों) से, सुखम् अवाप्यते = सुख पाया जाता है।

व्याख्या—उद्भासिताखिलखलस्य [उद्भासिताः अखिलाः खलाः येन, तस्य] = निखिलान् दुर्जनान् प्रेरयतः विशृङ्खलस्य = स्वच्छन्दचारिणः, प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः [प्राग्जातानि विस्तृतानि निजानि यानि अधमकर्माणि, तैः वृत्तिः यस्य सः, तस्य] = पूर्वावस्थाकृतैः लोकविश्रुतनिजपापकर्मभिर्लब्धजीविकस्य। दैवात् = भाग्यात्, अवाप्तविभवस्य [अवाप्तः विभवः येन तस्य] = प्राप्तसमृद्धेः, गुणद्विषः [गुणान् द्वेष्टि इति, तस्य] = गुणद्रोहिणः, अस्य = पूर्वोक्तसर्वावगुणविशिष्टस्य, नीचस्य = अधमस्य, गोचरगतैः = सर्वेन्द्रियविषयतामुपलब्धैः कैः = जनैः, सुखम् = शर्म, अवाप्यते = उपलभ्यते ? न हि कैरपीति तात्पर्यम्। वसन्ततिलका छन्दः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावार्थः—यः सदा दुर्जनान् दुष्कर्मसु प्रेरयति, निरङ्कुशः सन् स्वकीयपूर्वकृतदुराचारै
वित्तरेण व्यवहरति स यदि भाग्यवशात्कुतश्चिद् धनमपि प्राप्नुयाच्चेत् तद्दृष्टिपथमुपेतस्य क
कल्याणं भविष्यति, न कस्यापीत्यर्थः।

भाषार्थ—सम्पूर्ण दुष्टोंको बढ़ावा देनेवाले, स्वच्छन्दचारी, पहले किये हुए अपने कुख्या
कर्मोंसे आजीविका चलानेवाले एवं अच्छे गुणों (दयादाक्षिण्य आदि) से द्वेषकरनेवाले क्षु
मनुष्यकी दृष्टि पड़ने पर कौन सुख पा सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥५९॥

खलों एवं सज्जनोंकी मैत्री में अन्तर—

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण,
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्द्ध-परार्द्धभिन्ना
छायेव मैत्री खल-सज्जनानाम् ॥ ६० ॥

अन्वयः—आरम्भगुर्वी, क्रमेण क्षयिणी, पुरा लघ्वी, पश्चात् वृद्धिमती च, दिनस्य
पूर्वार्द्ध-परार्द्धभिन्ना छायेव, खलसज्जनानां मैत्री (भवति) ।

पदार्थ—खलसज्जनानां = दुर्जनों और सज्जनोंकी। मैत्री = मित्रता। आरम्भगुर्वी =
प्रारम्भमें बड़ी। क्रमेण क्षयिणी = क्रमसे क्षीण होनेवाली। पुरा लघ्वी = पहले छोटा। पश्चात्
च वृद्धिमती = और पीछे बढ़नेवाली। दिनस्य = दिनके। पूर्वार्धपरार्धभिन्ना = पूर्वार्ध और
अपरार्धमें भिन्न रूपवाली। छाया इव = छायाकी तरह (होती है)।

व्याख्या—खलसज्जनानाम् [खलाः = दुर्जनाः सज्जना = सत्पुरुषाश्चेति ते, तेषाम्]
मैत्री = मित्रता, क्रमेण = क्रमशः आरम्भगुर्वी [आरम्भे = दिवसादौ गुर्वी = दीर्घा] (ततः)
क्षयिणी = क्षीयमाणा, पुरा = प्रथमम्, लघ्वी = अत्यल्पा, पश्चात् = अनन्तरम्, वृद्धि-
मती = अभिवृद्धिमधिगच्छन्ती, (अतः) पूर्वार्धपरार्धभिन्ना [पूर्वार्धे = प्रथमार्धे, प्रातरारभ्य
मध्याह्नं यावदिति भावः, परार्धे = उत्तरार्धे, मध्याह्नानन्तरं सायं यावत्, भिन्ना = पृथक्
पृथगाकारा] दिनस्य = अह्नः छाया = प्रतिबिम्बम्, इव = यथा भवति इतिशेषः। उप-
जातिर्वृत्तम्।

भावार्थः—यथा छाया दिनस्य पूर्वार्धे पूर्वं बृहद्रूपा पश्चाच्च क्रमशो क्षीयमाणा स्वल्पा,
तथाच उत्तरार्धे पूर्वं स्वल्पा पश्चाच्च क्रमशो वर्द्धमाना दृश्यते तथैव खलानां मैत्री पूर्वंतु
बृहद्रूपतां क्रमशश्च क्षीणतां तथा सज्जनानां मैत्री पूर्वं लघुतां क्रमशश्च वर्द्धमानतां गच्छति।
अतः सज्जनैः सह मैत्री कर्तव्या न तु खलैः।

भाषार्थ—दुर्जनोंको मित्रता दिनके प्रथम आधे भागमें रहनेवाली छायाकी तरह प्रारम्भमें
बड़ी और फिर धीरे-धीरे छोटी होती जाती है एवं सज्जनोंकी मैत्री उत्तरार्धकी छायाकी तरह
पहले छोटी (थोड़ी) फिर बादमें उत्तरोत्तर बढ़नेवाली होती है ॥ ६० ॥

अकारण वैरी—

मृग-मीन-सज्जनानां तृण-जल-सन्तोष-विहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धक-धीवर-पिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥ ६१ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—जगति, लुब्धकधीवरपिशुनाः तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनां मृगमीनसज्जनानां निष्कारणवैरिणः [भवन्ति] ।

पदार्थ—जगति = संसारमें । तृण-जल-सन्तोषविहितवृत्तीनां = घास, जल और सन्तोषसे जीवन बिताते हुए । मृगमीनसज्जनानां = मृग, मछली और सज्जनोंके । (क्रमशः) लुब्धक-धीवर-पिशुनाः = व्याध, केवट और दुर्जन । अकारणवैरिणः = बिना किसी कारणके शत्रु । भवन्ति = होते हैं ।

व्याख्या—जगति = भुवने, लुब्धकधीवरपिशुनाः [लुब्धकाश्च, धीवराश्च, पिशुनाश्च] = व्याधकैवर्त्तदुर्जनाः, तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम् [तृणैः जलैः सन्तोषेण च विहिता वृत्तिः येषां ते, तेषाम्] = घाससलिलतृप्तिनिर्वाहितजीवनानां, क्रमेण मृगमीन-सज्जनानाम्, [मृगाः = हरिणाः, मीनाः = झषाः, सज्जनाः = सत्पुरुषाश्च, तेषाम्] निष्कारणवैरिणः [निष्कारणं वैरमस्ति येषां ते] = हेतुं विनैव रिपवः भवन्तीतिशेषः । आर्या वृत्तम् ।

भावार्थः—वनेषु तृणभक्षणमात्रेण जीवतां मृगाणां व्याधाः, जलेषु स्वच्छन्दं विचरतां मत्स्यानां धीवराः, सन्तोषेण जीवनं निर्वर्तयतां सज्जनानां दुर्जनाश्च निर्हेतुकवैरिणो भवन्ति । मृगादिभिर्लुब्धकादीनां किमपराद्धम्, तथापि ते तान् क्लेशयन्ति ।

भाषार्थ—इस संसारमें तृण, पानी एवं सन्तोषसे जीवन बितानेवाले मृग, मछली और सत्पुरुषोंके क्रमशः बहेलिया, मल्लाह तथा दुर्जन अकारण ही शत्रु होते हैं ॥ ६१ ॥

वन्दनीय सज्जनोंके लक्षण—

> वाञ्छा सज्जनसङ्गमे, परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता,
> विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम् ।
> भक्तिः शूलिनि, शक्तिरात्मदमने, संसर्गमुक्तिः खले,
> येष्वेते निवसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥ ६२ ॥

अन्वयः—सज्जनसङ्गमे वाञ्छा, परगुणे प्रीतिः, गुरौ नम्रता, विद्यायां व्यसनं, स्वयोषिति रतिः, लोकापवादाद् भयं, शूलिनि भक्तिः, आत्मदमने शक्तिः, खले संसर्गमुक्तिः, एते निर्मल-गुणाः येषु निवसन्ति, तेभ्यो नरेभ्यः नमः ।

पदार्थ—सज्जनसंगमे = सज्जनोंकी संगतिमें, वाञ्छा = इच्छा । परगुणे = दूसरोंके गुणमें, प्रीतिः = प्रेम । गुरौ = पूज्यजनोंमें, नम्रता = विनय भाव । विद्यायां व्यसनं = शास्त्रोंके अध्ययनाध्यापनमें प्रवृत्ति । स्वयोषिति = अपनी ही स्त्रीमें, रतिः = आसक्ति । लोकापवादाद् भयं = जनापवादसे भय । शूलिनि भक्तिः = शिवजीके आराधनमें प्रसक्ति । आत्मदमने शक्तिः = मनको वशमें करनेकी सामर्थ्य । खले = दुर्जनके विषयमें, संसर्गमुक्तिः = संपर्कमें न रहना, एते निर्मलगुणाः = ये स्वच्छगुण, येषु निवसन्ति = जिनमें रहते हैं, तेभ्यो नरेभ्यो नमः = उन मनुष्योंके लिये नमस्कार है ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—सज्जनसङ्गमे, [सज्जनानां संगमः तस्मिन्]=सत्पुरुषसमागमे वाञ्छा स्पृहा। परगुणे [परस्य गुणः परगुणः तस्मिन्] प्रीतिः=प्रेम, गुरौ=पूजनीये नम्रता=विनयः। विद्यायाम्=ज्ञानप्राप्तौ, व्यसनम्—अनुरक्तिः, स्वयोषिति=स्वध पत्न्याम्, रतिः=स्नेहः, लोकापवादात्=लोकनिन्दायाः, भयम्=भीतिः, शूलिनि शङ्करे, भक्तिः=परानुरागः। आत्मदमने [आत्मनः, दमनं तस्मिन्]=चित्तनिग्रहे शक्तिः क्षमता। खले=दुर्जने, संसर्गमुक्तिः=सम्बन्धपरित्यागः। येषु=मानवेषु एते=पूर्वोक्त निर्मलगुणाः=[निर्मलाश्च ते गुणाश्च इति ते] पवित्रगुणाः निवसन्ति=निःशेषेण स तेभ्यः=तादृशगुणयुक्तेभ्यः नरेभ्यः=महापुरुषेभ्यः, नमः=नमस्कारः, अस्त्विति शेषः शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

भावार्थः—सत्सङ्गतिरित्यादयः श्लोकोक्ता गुणा येषु भवन्ति ते सुतरां महान्तो भवे अतस्ते नमस्करणीयाः, तेषां च चरितमनुकरणीयं भवति।

भाषार्थ—सत्संगकी अभिलाषा, दूसरेके गुणोंमें प्रेम, गुरुजनोंके प्रति विनम्रता, विद्य अभिरुचि, अपनी धर्मपत्नीमें अनुरक्ति, लोकापवादसे डर, भगवान् शङ्करमें भक्ति, मनको वश करनेकी क्षमता, तथा दुर्जनोंके साथ न रहना, ये पवित्र गुण जिन महापुरुषों में रहते हैं उन नमस्कार है ॥ ६२ ॥

महापुरुषोंका लक्षण—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाऽभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥ ६३ ॥

अन्वयः—विपदि धैर्यम्, अथ अभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः, यशसि च अभिरुचिः, श्रुतौ व्यसनम्। इदं हि महात्मनां प्रकृतिसिद्धम्।

पदार्थ—विपदि धैर्य=आपत्ति आनेपर धैर्य। अभ्युदये क्षमा=समृद्धि होने सहनशीलता। सदसि=सभामें। वाक्पटुता=बोलनेका चातुर्य। युधि=युद्धमें। विक्रमः= शौर्य। यशसि च=कीर्तिमें। अभिरुचिः=(अर्जनकी) इच्छा। श्रुतौ=शास्त्रमें। व्यसनं= प्रवृत्ति। इदं हि=यह सब तो। महात्मनां=महात्माओंके लिये। प्रकृतिसिद्धं=स्वभावत प्रसिद्ध है।

व्याख्या—विपदि=विपत्तौ, धैर्यम्=धीरता, अथ=अपि च अभ्युदये=सर्वतो भावेनाभिवृद्धौ, क्षमा=सहनशीलता, सदसि=सभायाम्, वाक्पटुता=वाग्मिता, युधि= युद्धे विक्रमः=पराक्रमः, यशसि=कीर्तौ अभिरुचिः=अधिकं प्रेम, श्रुतौ=वेदे च व्यसनम्=आसक्तिः। हि=निश्चयेन, इदम्=पूर्वोक्तं सर्वम्, महात्मनाम्=सत्पुरुषाणा मिति भावः। प्रकृतिसिद्धम् [प्रकृत्या सिद्धम्]=नैसर्गिकं भवतीति शेषः। द्रुतविलम्बित वृत्तम्।

भावार्थः—महापुरुषाणामयं स्वाभाविको गुणः, यत्ते विपदि व्याकुला न भवन्ति समृद्धौ सर्वं क्षमन्ते, सभायां वाग्मितया सर्वान्मोहयन्ति, युद्धे कातरा भूत्वा न पलायन्ते, यशोवृद्ध सततं प्रयतन्ते, शास्त्रेषु च सततं ...

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भाषार्थ—विपत्ति के समय धैर्य, अधिक उन्नति होनेपर भी शान्ति, सभामें बोलनेको पटुता, संग्राममें पराक्रम, यश प्राप्त करेनेमें विशेष रुचि एवं वेद पढ़नेमें अनुरक्ति—ये सभी विशेषतायें सज्जनोंमें स्वभावसे ही पाई जाती हैं ॥ ६३ ॥

सज्जनताका काठिन्य—

प्रदानं प्रच्छन्नं, गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः,
प्रियं कृत्वा मौनं, सदसि कथनं चाप्युपकृतेः ।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधारावतमिदम् ॥ ६४ ॥

अन्वयः—प्रच्छन्नं प्रदानं, गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः, प्रियं कृत्वा मौनम्, उपकृतेः चापि सदसि कथनं, लक्ष्म्यामनुत्सेकः, परकथाः निरभिभवसाराः। इदं सतां विषमम् असिधारावतं केनोद्दिष्टम् ? ॥

पदार्थ—प्रदानं=दानको, प्रच्छन्नं=गुप्त रखना। गृहमुपगते=(किसी व्यक्तिके) घरमें आजानेपर, संभ्रमविधिः=(उसका) अच्छा सत्कार करना। प्रियं कृत्वा=(किसीका) भलाकरके, मौनं=चुप रहना। अपि च=और। उपकृतेः=(दूसरोंसे अपने प्रति) कियेगये उपकारका। सदसि च कथनं=सभामें भी कहना। लक्ष्म्यां=संपत्ति (होनेपर), अनुत्सेकः= गर्व न होना, परकथाः=दूसरोंसे संबद्ध वार्ताओंको। अनभिभवगन्धाः=तिरस्कारका लेश भी जिसमें न हो (ऐसे वर्णन करना), इदं=इस प्रकार। विषमं=कठिन। असिधाराव्रतं= तलवारकी धार जैसा कठोर नियम। सतां=सज्जनोंके लिये। केन उद्दिष्टम्=किसने बताया ?

व्याख्या—प्रदानम्=दानम्, **प्रच्छन्नम्**=गुप्तरूपेण, **गृहम्**=गेहम्, **उपगते**= आयाते अतिथावितिभावः, **सम्भ्रमविधिः**, [सम्भ्रमस्य विधिः इति]=आदरप्रदर्शनम्, **प्रियम्**=अभीष्टम् **कृत्वा**=सम्पाद्य, **मौनम्**=तूष्णींभावः **अपि च**=अन्यच्च, **सदसि**= सभायाम्, **उपकृतेः**=परेण कृतस्य उपकारस्य **कथनम्**=प्रकाशनम्, **लक्ष्म्याम्**=सम्पत्तौ **अनुत्सेकः**=[न उत्सेकः]=गर्वराहित्य, **परकथाः**, [परेषां कथाः]=इतरचरितवर्णनानि **अनभिभवगन्धाः**, [नास्ति अभिभवस्य गन्धः यासु ताः]=निन्दालेशरहिताः, **इदम्**=पूर्वोक्तं सर्वम्, **विषमम्**=दुष्करणीयम्, **असिधाराव्रतम्**=खड्गधारेव तीक्ष्णो नियमः, **सताम्**=सज्जनानाम्, **केन**=मनुष्येण, **उद्दिष्टम्**=समुपदिष्टम् ? **शिखरिणी छन्दः** ।

भावार्थः—अतीव कठिननिर्वाहोऽयं सज्जनानां नियमः यत्ते किंचिदपि दत्त्वा न प्रकाशयन्ति। गृहागतं जनमादरेण सत्कुर्वन्ति, परस्योपकारं कृत्वापि न प्रकटयन्ति किन्तु परेण कृतमुपकारं सर्वेभ्यो वर्णयन्ति, समृद्धयां सत्यामपि गर्वलेशं न वहन्ति, परवार्ताप्रकरणे न कथंचिदपि तिरस्कारसूचकवाक्यानि ब्रुवते।

भावार्थ—गुप्त रूपसे (किसीको) कुछ दिया जाय तो उसे प्रकाशित न करना, अतिथि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
के साथ आदरका व्यवहार करना, दूसरेकी भलाई करके चुप रहना, (दूसरे द्वारा किए ग उपकारको सभामें कहना, धन होनेपर भी अहंकार न करना, दूसरोंका वर्णन करनेमें उन निन्दा न करना, इस प्रकार तलवारकी तीक्ष्ण धारके समान कठिन व्रतका किसने सज्जनो उपदेश दिया है ॥ ६४ ॥

महापुरुषोंके स्वाभाविक अलंकरण—

करे श्लाघ्यस्त्यागः, शिरसि गुरुपादप्रणयिता,
मुखे सत्या वाणी, विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतं च श्रवणयो-
र्विनाऽप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥ ६५ ॥

अन्वयः—करे श्लाघ्यः, त्यागः, शिरसि गुरुपादप्रणयिता, मुखे सत्या वाणी, भुजयो अतुलं वीर्यम् । हृदि स्वच्छा वृत्तिः, श्रवणयोः च अधिगतं श्रुतम् । इदम् प्रकृतिमहता ऐश्वर्येण विनाऽपि मण्डनम् ।

पदार्थ—करे = हाथमें । श्लाघ्यः = प्रशंसनीय । त्यागः = दान । शिरसि = मस्तकमें गुरुपादप्रणयिता = गुरुजनोंके पैरोंमें प्रणाम करनेकी प्रवृत्ति । मुखे = मुखमें, सत्या वाणी = सत्य बोलना । भुजयोः = भुजाओंमें । विजयि = विजय देनेवाला । अतुलं वीर्यं = अतुलनी पराक्रम । हृदि = हृदयमें । स्वच्छा वृत्तिः = निष्कपट व्यवहार, श्रवणयोः = कानोंमें । श्रुतमधि गतं च = शास्त्रोंका समझना । इदं = यह सब, प्रकृतिमहतां = स्वभावसे ही जो महान् है उनका । ऐश्वर्येण विनापि = समृद्धिके बिना भी । मण्डनम् = अलंकरण है ।

व्याख्या—करे = हस्ते, श्लाघ्यः = प्रशंसनीयः, त्यागः = अन्येभ्यो दानम्, शिरसि = मूर्ध्नि गुरुपादप्रणयिता [गुरोः पादौ गुरुपादौ, तयोः प्रणयिता] = गुरुजनानां पादप्रणाम रूपा नम्रता, मुखे = आनने, सत्या = ऋता, वाणी = वचनम्, भुजयोः = बाह्वोः, विजयि = जयशालि, अतुलम् = अद्वितीयम्, शौर्यम् = बलम्, हृदि = मानसे, स्वच्छा = निर्मला वृत्तिः = वर्तनं, भाव इति यावत् । श्रवणयोः = श्रोत्रयोः, च अधिगतम् = ज्ञातम्, श्रुतम् = शास्त्रम्–इदं = सर्वम्, ऐश्वर्येण = भूत्या, विनाऽपि = अन्तरेणापि, प्रकृतिमहताम् [प्रकृत्या महान्तः प्रकृतिमहान्तः, तेषां] = स्वभावतः श्रेष्ठानां, मण्डनम् = आभूषणम् अस्तीति शेषः । शिखरिणीवृत्तम् ।

भावार्थः—इतरेषामाभूषणानां कृते द्रव्यमपेक्षते किन्तु दानं, गुरुभक्तिः, सत्या वाणी, शौर्यं, निर्मला चित्तवृत्तिः, शास्त्राध्ययनं च महापुरुषाणां द्रव्यनिरपेक्षाण्येव तत्तदङ्गानां भूषणानि सन्ति ।

भाषार्थ—हाथमें प्रशंसा करने योग्य दान, मस्तकपर गुरु-चरणोंमें किया गया प्रणाम, मुखमें सच्ची वाणी, भुजाओंमें विजय दिलानेवाला अतुल बल, मनमें शुद्धभाव, एवं कानोंमें शास्त्रका ज्ञान—ये सभी चीजें स्वभावतः महान् पुरुषोंके लिए बिना धनसे ही पाये गये आभूषण हैं ॥ ६५ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
सज्जनोंकी विलक्षणता—

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् ।
आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम् ॥६६॥

अन्वयः—महतां चित्तं सम्पत्सु उत्पलकोमलं । आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम् (भवति)।

पदार्थ—महतां चित्तं = महापुरुषोंका हृदय। सम्पत्सु = समृद्धि होनेपर, उत्पलकोमलं = कमलके समान कोमल। च = और। आपत्सु = विपत्तिमें। महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम् = बड़े बड़े पर्वतोंकी चट्टानों जैसा कठोर, भवति = होता है।

व्याख्या—महताम् = महात्मनाम्, चित्तम् = स्वान्तम्, सम्पत्सु = सुखसामग्रीषु सतीषु, उत्पलकोमलम्, [उत्पलमिव, कोमलम्] = कुवलयमृदुलम्, आपत्सु = विपत्सु च, महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम् [महांश्चासौ शैलः महाशैलः, शिलानां सङ्घातः शिलासङ्घातः, महाशैलस्य शिलासंघातः, स इव कर्कशम् इति] = महागिरिप्रस्तरसमूहवत्-कठोरम्। भवतीति शेषः। अनुष्टुब् वृत्तम्।

भावार्थः—ये प्रकृत्या महान्तस्ते विभवे सति दयालवो भवन्ति, विपत्तौ तु पर्वतशिलासमूह इव कठोरहृदया भूत्वा तां सहन्ते।

भाषार्थ—सज्जनोंका चित्त सम्पत्तिके समय कमलकी भाँति कोमल होता है, और वही आपत्तिमें विशाल पहाड़की चट्टानोंकी तरह अत्यन्त कठोर हो जाता है ॥ ६६ ॥

संगतिके अनुसार गुणोंकी उत्पत्ति—

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
मुक्ताऽऽकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते।
स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ॥६७॥

अन्वयः—संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते, तदेव पयः नलिनीपत्रस्थितं मुक्ताकारतया राजते। तत् स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं मौक्तिकं जायते। (हि) प्रायेणाऽधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते।

पदार्थ—संतप्तायसि = गरम लोहेपर। संस्थितस्य = पड़े हुए। पयसः = जलका। नामापि न ज्ञायते = नाम भी नहीं रह जाता। तदेव = वहीं जल। नलिनीपत्रस्थितं = पुरइनके पत्तेपर पड़ा हुआ मुक्ताकारतया राजते = मोती जैसा शोभित होता है। तत् = वही (जल)। स्वात्यां = स्वाति (नक्षत्र) में। सागरशुक्तिमध्यपतितं = समुद्रकी सीपीके बीच पड़कर। मौक्तिकं जायते = मोती हो जाता है। प्रायेण = प्रायः करके। (व्यक्ति) अधममध्यमोत्तम-गुणः = नीच, मध्यम और उत्तम गुणवाला। संसर्गतः = संगतिसे ही। जायते = होता है।

व्याख्या—सन्तप्तायसि, [सन्तप्तं च तत् अयः तस्मिन्] = ज्वलिते लौहे, संस्थि-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri

तस्य = वर्तमानस्य, पयसः = सलिलस्य नामापि = अभिधानमपि न ज्ञायते = नहि ज्ञातुं शक्यते । तदेव = तत्सलिलमेव, नलिनीपत्रस्थितम् [नलिन्याः पत्रम् नलिनीपत्रं, तस्मिन् स्थितम्, तत्] कमलिनीपत्रे वर्तमानं, मुक्ताकारतया [मुक्तायाः आकार इव आकारः अस्यास्तीति मुक्ताकारः, तस्य भावः मुक्ताकारता, तया] = मुक्तास्वरूपेण राजते = भ्राजते, तदेव जलम्, स्वात्याम् = स्वातीनक्षत्रे, सागरशुक्तिमध्यपतितम् [सागरे या शुक्तिः = तस्याः मध्ये पतितम्, तत्] = समुद्रान्तर्गतशुक्तिमध्यगतं मौक्तिकम् मुक्तामणिः, जायते = उत्पद्यते, हि = समीचीनमेव, प्रायेण = बहुशः, अधममध्यमोत्तमगुणः = न्यूनःमध्यमःश्रेष्ठः गुणः, (अत्र प्रत्येकाभिप्रायेणैकवचनम्) संसर्गतः = सम्पर्कवशात्, जायते = समुद्भवति शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

भावार्थ—प्रायो हि जनः नीचसंसर्गान्नीचो भूत्वा विनश्यति, मध्यमसंसर्गान्मध्यमः, उत्तमसंसर्गाच्चोत्तमो भवति, यथा जलविन्दुः तप्तलोहपतितः सन् नश्यति, कमलपत्रे मुक्तावद्राजते, शुक्तिमध्यगतं तु मुक्तेव भवति । अयमेव संसर्गमहिमा ।

भाषार्थ—गर्मलोहेपर गिरे हुए जलका नाम भी नहीं दिखाई पड़ता, (किन्तु वही जल पुरइनके पत्तेपर गिरनेपर मोतीकी तरह चमकता है, एवं स्वाती नक्षत्रमें समुद्रकी सीपमें गिरकर वही जल (साक्षात्) मोती बन जाता है । अधम मध्यम और उत्तम गुण प्रायः सम्पर्कसे ही उत्पन्न होते हैं ॥६७॥

बड़े पुण्योंसे प्राप्त होनेवाले पदार्थ—

यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो,
यद् भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम् ।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य-
देतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥६८॥

अन्वयः—यः पितरं सुचरितैः प्रीणयेत् स पुत्रः, यद्भर्तुः एव हितमिच्छति तत् कलत्रं यदापदि सुखे च समक्रियम् तन्मित्रम्, एतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ।

पदार्थ—यः = जो, पितरं = पिताको, सुचरितैः = (अपने) सदाचरणोंसे । प्रीणयेत् = प्रसन्न करे, सः पुत्रः = वही पुत्र है । यत् = जो, भर्तुः = स्वामीका, हितमेव इच्छति = हित ही चाहती है, तत् कलत्रं = वही पत्नी है । तन्मित्रं = वही मित्र है, यत् = जो, आपदि = आपत्तिमें, सुखे च = और सुखमें, समक्रियं = समान व्यवहारवाला हो । एतत्त्रयं = इन तीनें (सत्पुत्र, सती स्त्री, और सन्मित्र) को, जगति = संसारमें, पुण्यकृतः = पुण्यवान् व्यक्ति (ही) लभन्ते = पाते हैं ।

व्याख्या—यः = तनयः, सुचरितैः = आज्ञापालनादिरूपैः सदाचरणैः, पितरम् = जनकम्, प्रीणाति = प्रसादयति, सः (एव) पुत्रः = वस्तुतः सुतः (कथ्यते), यद्भर्तुः = स्वस्वामिनः, हितमेव = कल्याणमेव, इच्छति = अभिलषति, तत् कलत्रम् = भार्या, यत्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri
आपदि = विपत्तौ, **सुखे** = सम्पत्तौ च **समक्रियम्** , [समा क्रिया यस्य तत्] = एकव्यवहारं, **तदेव** = तादृग्गुणयुक्तमेव **मित्रम्** = सखा उच्यते, **एतत्त्रयम्** = पूर्वोक्तम्, **जगति** = संसारेऽस्मिन्, **पुण्यकृतः** [पुण्यम् कृतवन्त इति पुण्यकृतस्ते] = पुण्यशालिन एव, **लभन्ते** = प्राप्नुवति। **वसन्ततिलका वृत्तम्** ।

भावार्थः—सदाचारशीलः सुतः, हितकारिणी, पत्नी, सर्वदा समानुभूतिवन्मित्रं च महता पुण्येन जनैर्लभ्यते ।

भाषार्थ—जो अपने सदाचारसे पिताको सन्तुष्ट कर देता है वही पुत्र है। जो सदा पति की भलाई ही चाहती है वही वस्तुतः पत्नी है, जो दुःख और सुख दोनोंमें समान व्यवहार करता है वही सच्चा मित्र है। इस संसारमें पुण्यशाली मनुष्य ही इन तीनोंको प्राप्त करते हैं ॥६८॥

आश्रय एकका ही करना चाहिये—

एको देवः केशवो वा शिवो वा,
ह्येकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा ।
एको वासः पत्तने वा वने वा,
एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥६९॥

अन्वयः—एको देवः-केशवो वा शिवो वा [आश्रयणीयः]। हि एकं मित्रं-भूपतिर्वा, यतिर्वा [कर्त्तव्यम्]। एको वासः-पत्तने वा वने वा [कर्त्तव्यः]। एकानारी-सुन्दरी वा दरी वा [आश्रयणीया]।

पदार्थ—देवः एकः = देवता एक (मानना चाहिये), केशवो वा = या तो विष्णु, शिवो वा = अथवा शिव । एकं मित्रं = मित्र एक (होना चाहिये), भूपतिः वा = या तो राजा, यतिर्वा = अथवा संन्यासी। वासः एकः = वास स्थान एक (होना चाहिये), पत्तने वा = शहर में हो, वने वा = अथवा वनमें। नारी एका = स्त्री भी एक हो (होनी चाहिये), सुन्दरी वा = या तो सुन्दरी हो, दरी वा = अथवा गुफा हो।

व्याख्या—(मनुष्यैः) **केशवः** = विष्णुः **वा** = अथवा, **शिवः** = कल्याणकरो रुद्रो वा एकः अद्वितीयः, **देवः** = अमरः आश्रयणीय इति तात्पर्यम्। **भूपतिः** = नृपः वा अथवा **यतिः** = योगी वा, **एकम्** = उभयोर्मध्ये किञ्चित् **मित्रम्** = सखा, (कर्त्तव्यम्), **पत्तने** = नगरे वा, **वने** = विपिने वा उत, **एकः** = केवलम् एकत्र एव **वासः** = निवासो विधेय इति यावत्। **सुन्दरी** = सौन्दर्ययुता, काचित् कामिनी, **वा** = अथवा, **दरी** = कन्दरा, **वा** = आहोस्वित्, **एका** = उभयोरन्तरा, **भार्या** = पत्नी, आश्रयणीयेतिशेषः। **शालिनी वृत्तम्** ।

भावार्थः—मनसः द्वौ भावौ भवतः अनुरक्तिर्विरक्तिश्च । तत्रानुरक्तौ सत्यां देवेषु विष्णु सेव्यः, भूपतिर्मित्रं कर्त्तव्यं, पत्तने वासः कर्त्तव्यः, सुन्दरी नारी सेव्या, विरक्तौ सत्यां तु शिवो देवः, यतिर्मित्रं, वने वासः, गुहारूपा स्त्री सेव्या, तदैव कल्याणं भवति ।
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri
भावार्थ—मनुष्यको विष्णु या शङ्कर इन दोनोंमें किसी एकको ही अपना इष्टदेव बनाना चाहिए, एक ही अपना सखा बनाना चाहिए चाहे वह राजा हो या विरक्त संन्यासी, एक ही जगह रहना भी चाहिए चाहे वह शहर हो या जंगल, एवं केवल एक ही स्त्रीका आश्रय होना चाहिए चाहे वह कामिनी हो अथवा गुफा ॥ ६९ ॥

अभिनन्दनीय सज्जन—

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान्गुणान्ख्यापयन्तः,
स्वार्थान्सम्पादयन्तो विततपृथुतरारम्भयत्नाः परार्थे ।
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान्दुर्जनान्दूषयन्तः
सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः ॥ ७० ॥

अन्वयः—नम्रत्वेनोन्नमन्तः, परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः, परार्थे विततपृथुतरारम्भयत्नाः सन्त एव स्वार्थान्सम्पादयन्तः, क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखा दुर्जनान् दूषयन्तः, साश्चर्यचर्याः जगति बहुमताः सन्तः कस्य नाभ्यर्चनीयाः ? ।

पदार्थ—नम्रत्वेन = विनम्र होनेसे । उन्नमन्तः = उन्नतिको प्राप्त हुए । परगुणकथनैः = दूसरोंके गुणोंके वर्णन द्वारा । स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः = अपने गुणोंको प्रकट करते हुए । परार्थे = दूसरोंके लिये । विततपृथुतरारम्भयत्नाः = बढ़ाये हुए बड़े बड़े कार्योंके आरम्भका उद्योग करते हुए । स्वार्थान् सम्पादयन्तः = (उसीके द्वारा) अपने प्रयोजनोंको भी सिद्ध करते हुए । आक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान् = निन्दात्मक होनेसे परुष वाणीसे वाचाल मुखों वाले, दुर्जनान् = खलोंको । क्षान्त्यैव = क्षमासे ही । दूषयन्तः = लज्जित करते हुए । साश्चर्यचर्याः = विस्मयकारक चरित्रोंवाले । बहुमताः = अत्यन्त संमाननीय । सन्तः = सज्जन । जगति = संसारमें । कस्य नाभ्यर्चनीयाः = किसके द्वारा पूज्य नहीं हैं ।

व्याख्या—नम्रत्वेन = विनयित्वेन, उन्नमन्तः = उन्नतिपथमधिगच्छन्तः परगुणकथनैः [परेषां गुणाः तेषां कथनानि, तैः] = अन्येषां सौजन्यादिवर्तनैः, स्वान् = स्वकीयान्, गुणान् ख्यापयन्तः = प्रकटयन्तः, परार्थे, [परेषाम् अर्थे] = अन्येषाम् कार्यसिद्धये, विततपृथुतरारम्भयत्नाः, [पृथुतरः = अतिशयेन महान्, आरम्भः = उपक्रमो यस्य सः पृथुतरारम्भः, स चासौ यत्नः = उद्योगः, विततः = विस्तृतः पृथुतरारम्भयत्नः यैस्ते] स्वार्थान् सम्पादयन्तः = निर्वर्तयन्तः आक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान्, [आक्षेपेण = रूक्षाणि च तानि अक्षराणि आक्षेपरूक्षाक्षराणि, आक्षेपरूक्षाक्षरैः मुखरं मुखं येषां ते, तान्] = परनिन्दात्मकतया परुषैर्वर्णैः वाचालमुखान्, दुर्जनान् = दुष्टपुरुषान्, क्षान्त्या = क्षमया, एव = निश्चयेन, दूषयन्तः = तिरस्कुर्वन्तः, साश्चर्यचर्याः [आश्चर्येण सहिता साश्चर्या, तादृशी चर्या येषां ते] = विस्मयपूर्णचेष्टावन्तः बहुमताः [बहूनां मताः] = सर्वादरणीयाः सन्तः = सज्जनाः, जगति = संसारे, कस्य = कस्य जनस्य, नाभ्यर्चनीयाः = न पूजयितुमर्हाः ? अपि तु सर्वस्यैव पूज्या इत्यर्थः । स्रग्धरा छन्दः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावार्थः—ये सज्जनाः विनीततयाऽभ्युदयमाप्ताः, ये च परगुणवर्णनद्वारा स्वगुणप्रख्यापने दक्षाः, ये च प्रयासविशेषेण महान्तमपि परार्थं संसाध्य तद्द्वारेण स्वार्थमपि साधयन्ति, आत्मनः सहिष्णुतया निन्दापरान् खलान् लज्जयितुं प्रभवन्ति, एवंविधा विचित्रचरित्रास्ते जगति केषां न मानार्हा भवन्ति, अपितु सर्वस्ते सत्कार्या भवन्तीति भावः।

भाषार्थ—विनम्रतासे [झुकनेसे] ही अभ्युन्नति करनेवाले, दूसरोंके गुणोंके वर्णन द्वारा ही अपने गुणोंको प्रकाशित करनेवाले, दूसरोंके अत्यन्त बड़े कार्यकी सिद्धिके लिए उद्योग करते हुए ही अपने कार्यकी सिद्धि करनेवाले, कटुभाषी मुखोंवाले दुष्टोंका क्षमा द्वारा ही तिरस्कार करनेवाले, आश्चर्यजनक आचरणकरनेवाले मान्य सज्जन इस संसारमें किसके लिए पूजनीय नहीं होते ? [अर्थात् सबके लिये पूजनीय होते हैं] ॥ ७० ॥

परोपकारियोंका स्वभाव—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः, सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ ७१ ॥

अन्वयः—तरवः फलोद्गमैः नम्राः भवन्ति, घनाः नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनः [भवन्ति]। सत्पुरुषाः समृद्धिभिरनुद्धता [भवन्ति]। एष परोपकारिणां स्वभाव एव।

पदार्थ—तरवः = वृक्ष। फलोद्गमैः = फल लगनेपर। नम्रा भवन्ति = झुक जाते हैं। घनाः = मेघ। नवाम्बुभिः = नवीन जल भरनेपर। दूरविलम्बिनः = दूरतक लटक जाते हैं। सत्पुरुषाः = सज्जन व्यक्ति। समृद्धिभिः = ऐश्वर्य पानेपर। अनुद्धताः = उदण्डतासे रहित (होते हैं)। एषः = यह। परोपकारिणाम् = परोपकारियोंका। स्वभाव एव = स्वभाव ही है।

व्याख्या—**तरवः** = वृक्षाः, **फलोद्गमैः** [फलानाम् उद्गमैः] = फलप्रादुर्भावैः, **नम्राः** = विनीताः **भवन्ति** = जायन्ते, अधो लम्बन्त इति भाव। **घनाः** = वारिदाः **नवाम्बुभिः** = नूतनजलैः **दूरविलम्बिनः** [दूरं विलम्बन्ते इति] = दूरंयावदधो लम्बायमानाः, **भवन्ति**। **सत्पुरुषाः** = सज्जनाः, **समृद्धिभिः** = सम्पत्तिविशेषैः, **अनुद्धताः** = विनम्राः **भवन्ति** = जायन्ते। **एषः** = अयम्, **परोपकारिणाम्** = अन्योपकाररतानां सज्जनानाम् **स्वभावः** = प्रकृतिः, **एव** = नूनम्, अस्ति—इति शेषः। **वंशस्थवृत्तम्**।

भावार्थः—फलशालिनो वृक्षाः, सजलाः मेघाः, ऐश्वर्यवन्तः सज्जनाश्च नम्रा भवन्ति, यतो हि तेषां फलानि, जलानि समृद्धयश्च परार्थमेव भवन्ति न तु स्वार्थम्। इदं च नम्रत्वं परोपकारिणां स्वभावसिद्धो धर्मः।

भाषार्थ—फल लगनेपर तरु झुक जाते हैं (नम्र होते हैं), नये बरसनेवाले जलसे भरे बादल दूर तक झुक जाते हैं तथा सत्पुरुष समृद्धिके आधिक्यसे अतीव नम्र होते हैं। इस प्रकारका यह विनम्र होना (झुकना) परोपकार करनेवालों की स्वाभाविक विशेषता है ॥ ७१ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

वास्तविक आभूषण—

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन,
दानेन पाणिर्नतु कङ्कणेन ।
विभाति कायः करुणापराणां
परोपकारैर्न तु चन्दनेन ।। ७२ ।।

न्वयः—श्रोत्रं श्रुतेन एव विभाति, कुण्डलेन तु न [विभाति], पाणिः दानेन [विभाति], न तु कङ्कणेन, करुणापराणां कायः परोपकारैर्विभाति, तु चन्दनेन न [विभाति] ।

पदार्थ—श्रोत्रं = कान । श्रुतेन एव = शास्त्रादि सुननेसे ही । विभाति = शोभित होता है । न कुण्डलेन = कुण्डलसे नहीं । पाणिः तु = हाथ तो । दानेन = दानसे (शोभित होता है) । कङ्कणेन न = कङ्कणसे नहीं । करुणापराणां = दयालुपुरुषोंका । कायः = शरीर । परोपकारैः = दूसरोंका भला करनेसे ही (शोभित होता है) । न तु चन्दनेन = चन्दनका लेप करनेसे तो नहीं ।

व्याख्या—श्रोत्रम् = कर्णः, श्रुतेनैव = वेदादिश्रवणेनैव, विभाति = विशेषेण राजते, कुण्डलेन = कर्णाभरणेन तु न विभाति-इति भावः । पाणिः = करः, दानेन = धनादिवितरणेन एव, विभाति = शोभते, कङ्कणेन = वलयेन तु न शोभते-इति यावत् । करुणापराणाम् = दयारतानां जनानाम्, कायः = विग्रहः, परोपकारैः, [परेषाम् उपकाराः, तैः] = परहितसाधनैः, विभाति = विराजते, चन्दनेन = मलयजेन तु नैव शोभत इति तात्पर्यम् । उपजातिर्वृत्तम् ।

भावार्थः—कर्णे शास्त्रश्रवणेन, करे दानेन, काये च परोपकारैर्यादृशः कीर्तिकरः सौन्दर्यविशेषो जायते, न तादृशो नश्वरैः कुण्डल-कटक-चन्दनादिभिः । अतस्त एव संग्रहणीयाः सद्भिः ।

भाषार्थ—कानकी (वास्तविक) शोभा वेद-शास्त्रोंके सुननेसे होती है, कुण्डल पहननेसे नहीं । हाथ दान देनेसे शोभित होता है, कङ्कण पहननेसे नहीं और कृपालु मनुष्योंका शरीर दूसरेकी भलाई करनेसे ही शोभित होता है चन्दन लगाने से नहीं ॥ ७२ ॥

सन्मित्रका लक्षण—

पापान्निवारयति, योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति, गुणान्प्रकटीकरोति ।
आपद्गतं च न जहाति, ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ७३ ॥

अन्वयः—पापात् निवारयति, हिताय योजयते, गुह्यं निगूहति, गुणान् प्रकटीकरोति, आपद्गतं च न जहाति, काले ददाति, सन्तः इदं सन्मित्रलक्षणं प्रवदन्ति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal
पदार्थ—पापात् = पाप करनेसे, निवारयति = रोकता है । हिताय योजयते = हितकर्ममें

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

लगाता है। गुह्यं निगूहति=(मित्रकी) गोपनीय बातको छिपाता है। गुणान्=(उसके) गणोंको। प्रकटीकरोति=प्रकट कर देता है। आपद्गतं=आपत्तिमें पड़े हुएको भी। न जहाति =नहीं छोड़ता। काले=समय पड़नेपर। ददाति=(धन आदिसे) सहायता करता है। सन्तः =सज्जन लोग। इदं=यही। सन्मित्रलक्षणं=सन्मित्रका लक्षण। निगदन्ति=कहते हैं।

व्याख्या—**सन्तः**=सत्पुरुषाः, **इदम्**=वक्ष्यमाणम्, **सन्मित्रलक्षणम्** [सन्मित्रस्य लक्षणम्]=सुहृच्चिह्नम् **इदं**=एतद्रूपं, **निगदन्ति**=निरूपयन्ति (यत् सन्मित्रम्) **पापात्**=पापकर्मणः, **निवारयति**=निवर्तयति, **हिताय**=हितकारिणे कार्याय, **योजयते**= नियोजयति। **गुह्यम्**=गोपनीयं वृत्तमिति शेषः। **निगूहति**=निःशेषेण गोपयति। **गुणान्**= दयादाक्षिण्यादीन्, **प्रकटीकरोति**=प्रकटयति। **आपद्गतम्**=विपत्तिग्रस्तम्, **न जहाति**= न परित्यजति। **काले च**=अनुकूले समये च, **ददाति**=धनादिकं वितरति। **वसन्ततिलका वृत्तम्**।

भावार्थः—यच्च मित्रं हानिकरात् कर्मणो निवार्य श्रेयस्करे कर्मणि प्रवर्तयति, तस्य दुष्कृतं संगोप्य गुणान् ख्यापयति, विपत्तौ च तस्य साहाय्यं करोति, यदा-कदा च तदावश्यकतां पूरयति तदेव सन्मित्रम्, इति सद्भिर्निश्चितम्।

भाषार्थ—सत्पुरुष अच्छे मित्रका यही लक्षण बताते हैं कि वह मित्रको बुरे कार्योंसे रोकता है, हितकारी कार्योंमें लगाता है, छिपाने योग्य बातोंको गुप्त रखता है, गुणोंको प्रकाशित करता है, आपत्ति कालमें भी साथ नहीं छोड़ता तथा आवश्यकता पड़नेपर सहायता प्रदान करता है ॥ ७३ ॥

सज्जनोंको प्रेरणाकी आवश्यकता नहीं—

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति,
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति,
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः ॥७४॥

अन्वयः—नाभ्यर्थितः दिनकरः पद्माकरं विकचीकरोति। [नाभ्यर्थितः] चन्द्रः कैरवचक्रवालं विकासयति, [नाभ्यर्थितो] जलधरोऽपि जलं ददाति, सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः [भवन्ति]।

पदार्थ—नाभ्यर्थितः=बिना किसीके प्रार्थना किये हुए। दिनकरः=सूर्य। पद्माकरं= कमलसमूहको। विकचीकरोति=विकसित करता है। चन्द्रः=चन्द्रमा। कैरवचक्रवालं= कुमुदसमूहको। विकासयति=प्रफुल्लित करता है। जलधरोऽपि=मेघ भी। जलं ददाति= जल बरसाता है। सन्तः=(ऐसे ही) सज्जन लोग। परहितेषु=दूसरोंकी भलाईमें। स्वयं=अपने आप। कृताभियोगाः=किया है उद्योग जिन्होंने ऐसे (होते हैं)।

व्याख्या—**नाभ्यर्थितः**, [न अभ्यर्थितः]=अप्रार्थितः सन्, **दिनकरः** [दिनम् करोतीति]=सूर्यः, **पद्माकरं** [पद्मानाम् आकरः तं]=कमलवनम्, **विकचीकरोति** [अविकचं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

विकचं करोतीति] अभूतद्भावे च्विप्रत्ययः ।=प्रफुल्लयति । चन्द्रः=इन्दुः, करवचक्रवालम्, [कैरवाणां चक्रवालम्]=कुमुदसमूहान्, विकासयति=विकासं प्रापयति। नाभ्यर्थितः=अप्रार्थितः, जलधरः=वारिदोऽपि, जलम्=पानीयम्, ददाति=वर्षति, हि=युक्तमेव (एतद्यत्), सन्तः=सज्जनाः, स्वयम्=स्वभावेन, परहितेषु [परेषाम् हितानि, तेषु]=जनकल्याणेषु, कृताभियोगाः [कृतः अभियोगः यैस्ते]=कृतप्रवृत्तयः, भवन्तीति शेषः। वसन्ततिलका वृत्तम् ।

भावार्थ—कमलवनविकासार्थं सूर्यस्य, कुमुदवनविकासार्थं च चन्द्रस्य, जलवर्षणार्थं च मेघस्य न कोऽपि प्रार्थनां करोति, ते स्वयमेव स्वं कार्यं मत्वा तत्तत् कुर्वन्ति, एवमेव सज्जनाः स्वभावत एव परहितं कर्म कुर्वन्ति, नतु तदर्थं तान् कश्चित्प्रेरयति ।

भाषार्थ—विना अनुनय-विनय किए ही सूर्य कमल-समूहको विकसित करता है, चन्द्रमा कुमुद-समूहको खिला देता है, एवं बादल सभी जीवोंको जल प्रदान करता है, (इस प्रकार) सज्जन भी अपने आप ही परोपकारमें लीन रहते हैं ॥ ७४ ॥

मनुष्योंकी चार श्रेणियाँ—

> एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये,
> सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये ।
> तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
> ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥७५॥

अन्वयः—ये स्वार्थं परित्यज्य परार्थघटकाः ते एके सत्पुरुषाः, ये स्वार्थाऽविरोधेन परार्थम् उद्यमभृतः (ते) तु सामान्याः, ये स्वार्थाय परहितं निघ्नन्ति तेऽमी मानुषराक्षसाः [भवन्ति] [किन्तु] ये निरर्थकं परहितं निघ्नन्ति, ते के [इति वयं] न जानीमहे ।

पदार्थ—एके सत्पुरुषाः=कुछ सज्जन पुरुष होते हैं । ये=जो । स्वार्थं परित्यज्य=अपनी भलाई छोड़कर भी । परार्थघटकाः=दूसरोंका कार्यसाधन करते हैं । तु=(वे) तो। सामान्याः=साधारण व्यक्ति हैं । ये=जो । स्वार्थाविरोधेन=अपने प्रयोजनोंपर आघात न करते हुये । परार्थम्=दूसरोंके लिये । उद्यमभृतः=उद्योग करते हैं । ते अमी=वे ये । मानुषराक्षसाः=नरपिशाच हैं । ये=जो । स्वार्थाय=अपनी प्रयोजन-सिद्धिके लिये । परहितं निघ्नन्ति=दूसरोंके हितोंको नष्ट करते हैं । ये तु=किन्तु जो, निरर्थकं=विना कारणके । परहितं निघ्नन्ति=दूसरोंके हित में बाधक होते हैं । ते के=वे कौन हैं । न जानीमहे=हम नहीं जानते ।

व्याख्या—(ते) सत्पुरुषाः=सज्जनाः, एके=अद्वितीयाः सन्ति (ये) स्वार्थम्=स्वहितम्, परित्यज्य=विहाय, परार्थघटकाः [परेषां प्रयोजनं परार्थं, परार्थस्य घटकाः]=परकार्यसाधकाः सन्ति । ये=पुरुषाः, स्वार्थाऽविरोधेन [स्वार्थस्य अविरोधेन]=स्वहितानुकूल्येन, परार्थम्=अन्यस्य कृते, उद्यमभृतः [उद्यमं बिभ्रति इति]=प्रयत्नवन्तः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
(भवन्ति) ते तु सामान्याः = साधारणाः जनाः सन्तीति यावत् । ते अमी = वक्ष्यमाणाः, मानुषराक्षसाः [मानुषेषु राक्षसाः इव] = नरपिशाचाः सन्ति, ये स्वार्थाय = स्वाभीष्टसिद्धये परहितम् [परेषाम् हितम्] = इतरकल्याणम्, निघ्नन्ति = विनाशयन्ति, ये तु = जनाः, निरर्थकम् [निर्गतः अर्थो यस्मादिति] = व्ययमेव, परहितम् = अन्यदीयप्रयोजनम् घ्नन्ति = ध्वंसयन्ति, ते = नराः के = किन्नामधेयाः सन्तीति, वयम्, न जानीमहे = नो विद्मः, न ते नामग्रहणयोग्या इति भावः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

भावार्थः—ये सर्वथा स्वार्थमुपेक्ष्यापि परार्थं साधयन्ति ते सज्जनाः, ये स्वार्थेन संमिश्रय परार्थं कुर्वन्ति ते साधारणाः, ये च केवलं स्वार्थपराः सन्तः परकार्यं विध्वंसयन्ति ते नरपिशाचाः उच्यन्ते । किन्तु अकारणमेव ये परहिते बाधका भवन्ति ते केनाभिधानेनाभिधीयन्ते इति न वयं जानीमः ।

भाषार्थ—इस संसारमें कुछ ऐसे सज्जन होते हैं जो अपने स्वार्थका परित्याग करके भी परोपकार करते हैं । कुछ लोग साधारण स्तरके होते हैं जो अपने स्वार्थके विपरीत न जाते हुये दूसरे लोगोंके अभीष्टकी सिद्धि करते हैं । वे मनुष्योंमें राक्षसके समान हैं, जो अपने स्वार्थकी सिद्धि के लिये दूसरेके हितका विनाश करते हैं । किन्तु जो दूसरोंके हितोंका निष्प्रयोजन ही विनाश करते हैं, वे कौन हैं, यह हमें ज्ञात नहीं होता है ॥७५॥

सज्जनोंकी मैत्रीका दृष्टान्त—

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा स्वेऽखिलाः
क्षीरोत्तापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशानौ हुतः ।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं
युक्तं तेन जलेन शाम्यति, सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥७६॥

अन्वयः—पुरा क्षीरेण हि आत्मगतोदकाय अखिलाः स्वे गुणा दत्ताः, तेन पयसा क्षीरोत्तापमवेक्ष्य स्वात्मा कृशानौ हुतः । तत्तु पुनः मित्रापदं दृष्ट्वा पावकं गन्तुमुन्मनोऽभवत् । तेन जलेन युक्तं (सत्) शाम्यति । सतां तु मैत्री ईदृशी ।

पदार्थ—पुरा = पहिले । क्षीरेण = दूधने । आत्मगतोदकाय = अपनेमें मिलेहुये जलको । ये अखिला गुणाः = (अपने) वे सारे गुण, दत्ताः = देदिये । क्षीरोत्तापम् अवेक्ष्य = दूधको उबलता देखकर । तेन पयसा = उस जलने । स्वात्मा = अपना शरीर । कृशानौ हुतः = अग्निमें हवन कर दिया । (तब) तत्तु = वह (दूध) भी । मित्रापदं दृष्ट्वा = मित्रं (जल) की विपत्ति देखकर । पावकं गान्तुं = अग्निमें जानेके लिये । उन्मनः अभवत् = उत्कंठित हो गया । तेन जलेन = उसी जलसे । युक्तं सत् = मिला हुआ । शाम्यति = शान्त होता है । सतां मैत्री पुनः = सज्जनोंकी मित्रता तो । ईदृशी = ऐसी (होती है) ।

व्याख्या—पुरा = प्रथमम्, क्षीरेण = दुग्धेन, आत्मगतोदकाय, [आत्मनि गतम् आत्मगतं, तच्च तदुदकं तस्मै] = स्वात्मनि मिश्रिताय जलाय, अखिलाः ते = प्रसिद्धाः,
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
गुणाः=स्वकीयधवलत्वादयः, हि=नूनम् दत्ताः=समर्पिताः, तेन=क्षीरमिश्रितेन, पयसा=जलेन क्षीरोत्तापम् [क्षीरस्य उत्तापम्]=दुग्धसन्तपनम्, अवेक्ष्य=विलोक्य, स्वात्मा=स्वदेहः, कृशानौ=वह्नौ हुतः=निक्षिप्तः, तत्=अग्निना संतप्तं क्षीरं (पुनः), मित्रापदम् [मित्रस्य आपदम्]=जलापदम् दृष्ट्वा=वीक्ष्य, पावकम्=अनलम्, गन्तुम्=प्रवेष्टुम्, उन्मनः=उत्कण्ठिम् अभवत्=संजातः, तेन=सुहृदा, जलेन=पानीयेन (पुनः) युक्तम्=मिश्रितम्, सत् शाम्यति=शीतलं भवति, तु=निश्चयेन, ईदृशी=एतादृशी, सताम्=सज्जनानाम् मैत्री=मित्रता भवतीति शेषः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

भावार्थ—दुग्धेन जले मिश्रिते सति पूर्वं जलं दुग्धस्य श्वेतत्वमधुरत्वादीन् गुणानादाय तन्मयमेव भवति। ततश्च दुग्धस्य आत्मगुणप्रदानरूपमुपकारं स्मृत्वा तज्जलं दुग्धमग्नावारोपितं सदुत्तप्तं दृष्ट्वा स्वयमग्नौ शुष्यति। जलस्य वह्निना शोषणं दृष्ट्वा पुनः दुग्धमपि वह्निपतनमाकांक्षति, जलं प्रक्षिप्ते तु प्रशाम्यति। एवमेव सज्जनानां परस्परं मैत्री भवति। ते चान्योन्यं गुणप्रदानं कष्टभारसहनं वियोगोत्तापं सहयोगेन निवृत्तं च लभन्ते।

भाषार्थ—दूधने पहले अपनेमें मिले हुए जलको अपने सभी गुण प्रदान कर दिये, फिर (जब वह आगपर रखा गया उस समय) दूधको जलते हुए देखकर जल स्वयं अग्निमें भस्म हो गया, अपने सखा (जल) का नाश देखकर दूध भी आगमें जानेके लिए व्याकुल हो उठा और अन्तमें जलको पाकर ही शान्त हुआ। वस्तुतः सज्जनोंकी मित्रता ऐसी ही होती है ॥ ७६ ॥

महान्‌की महत्ता—

इतः स्वपिति केशवः, कुलमितस्तदीयद्विषा-
मितश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते।
इतोऽपि वडवानलः सह समस्तसंवर्तकै-
रहो ! विततमूर्जितं भरसहं च सिन्धोर्वपुः ॥७७॥

अन्वयः—इतः केशवः स्वपिति, इतस्तदीयद्विषां कुलम्। इतश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते। इतोऽपि समस्तसंवर्तकैः सह वडवानलः। अहो सिन्धोर्वपुः, विततमूर्जितं भरसहं च।

पदार्थ—इतः=इधर। केशवः स्वपिति=विष्णु सोते हैं। इतश्च=और इधर। तदीयद्विषां=उन (विष्णु) से द्वेषकरनेवाले (राक्षसोंका) कुलम्=समूह। इतश्च=और इधर। शरणार्थिनां=शरणमें आये हुए। शिखरिणां गणाः=पर्वतोंके झुण्ड। शेरते=सोये हैं। इतोऽपि=इधर भी। समस्तसंवर्तकैः सह=सम्पूर्ण संवर्तकों (प्रलयकालीन मेघों) के साथ। वडवानलः=वडवाग्नि (रहता है)। अहो!=आश्चर्य है। सिन्धोः वपुः=समुद्रका शरीर। (कितना)। विस्तृतं=फैला हुआ। ऊर्जितं=बलशाली। भरसहं च=और भारको वहन करनेवाला है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—अहो = आश्चर्यम्, (अस्य) अम्बुधेः = समुद्रस्य, वपुः = गात्रम्, (कियत्) विततम् = विस्तृतम्, ऊर्जितम् = पराक्रमशालि, भरसहम् = भारधारणक्षमः, वर्तते (यत्र), इतः = एकतः, केशवः = विराड्रूपो विष्णुः स्वपिति = शेते, इतः = अन्यस्मिन् भागे, तदीयद्विषाम् = विष्णुशत्रूणां दैत्यानामिति यावत्, कुलम् = समूहः, तिष्ठति = निवसति, इतः = अन्यत्र, शरणार्थिनाम् = शरणागतानाम्, शिखरिणाम् = मैनाकादिगिरीणाम्, गणाः = वर्गाः, शेरते = स्वपन्ति, इतोऽपि = अपरस्मिन् प्रान्त भागे, समस्तसंवर्तकैः, [समस्ताश्च ते संवर्तकाः, तैः] प्रलयकालिकैः मेघैः, सह = साकं, वडवानलः = वडवाग्निः, च तिष्ठति = अवतिष्ठते । पृथ्वी वृत्तम् ।

भावार्थः—सर्वेषां शरणागतानामाश्रयदातारो महापुरुषा अवर्णनीयचरिता महामहिमशालिनो भवन्ति, यथा समुद्रः । समुद्रे च एकत्र विष्णुः स्वपिति, अपरत्र दैत्यकुलम्, अन्यत्र च इन्द्रकुलिशभीताः पर्वताः, इतरत्र प्रलयकालीनमेघैः सह वडवाग्निरेवं कियद्भारसहं विस्तृतं बलवच्च तद्वपुरस्ति ।

भाषार्थ—अहो सागरका शरीर कितना विशाल, पराक्रमशाली और भार धारण करनेवाला है, जिसमें एक ओर साक्षात् भगवान् विष्णु शयन करते हैं, तो दूसरी ओर उनके शत्रु दैत्योंका समूह, विहार कर रहा है, एक ओर शरणमें आये हुए मैनाक आदि पहाड़ोंका समूह विराजमान है तो दूसरी ओर बडवाग्नि सभी प्रलयकालीन बादलोंके साथ शोभित हो रही है ॥ ७७ ॥

सज्जनोंके लक्षण—

तृष्णां छिन्धि, भज क्षमां, जहि मदं, पापे रतिं मा कृथाः,
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं, सेवस्व विद्वज्जनम् ।
मान्यान्मानय, विद्विषोऽप्यनुनय, प्रख्यापय स्वान् गुणान्
कीर्तिं पालय, दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥ ७८ ॥

अन्वयः—तृष्णां छिन्धि, क्षमां भज, मदं जहि, पापे रतिं मा कृथाः, सत्यं ब्रूहि, साधुपदवीमनुयाहि, विद्वज्जनं सेवस्व, मान्यान्मानय, विद्विषोऽप्यनुनय, स्वान्गुणान् प्रख्यापय, कीर्तिं पालय, दुःखिते दयां कुरु, (हि) एतत् सतां लक्षणम् (अस्ति)।

पदार्थ—तृष्णां छिन्धि = तृष्णाको नष्ट करदो। क्षमां भज = क्षान्तिको ग्रहण करो। मदं जहि = घमंडको छोड़ दो। पापे रतिं मा कृथाः = पापमें आसक्ति मत करना। सत्यं ब्रूहि = सत्य बोलो। साधुपदवीम् = सज्जनोंकी पद्धतिका, अनुयाहि = अनुसरण करो। विद्वज्जनं सेवस्व = विद्वानोंकी सेवा करो। मान्यान् मानय = पूज्यजनोंका आदर करो। विद्विषोऽपि = शत्रुओंको भी, अनुनय = अनुकूल रखने की चेष्टा करो। प्रश्रयं = विनयको। प्रख्यापय = प्रकट करो। कीर्तिं पालय = यशकी रक्षा करो। दुःखिते = दुःखी प्राणीपर। दयां कुरु = दया करो। एतत् सतां चेष्टितं = यही सज्जनोंका आचरण है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याख्या—(हे मानव) तृष्णाम् = पिपासाम्, छिन्धि = नाशय, क्षमाम् = सहन-शक्तिम्, भज = सेवस्व, मदम् = स्मयम्, जहि = नाशय, पापे = दुष्कार्ये, रतिम् = अनुरक्तिम्, मा कृथाः = न कुरु, सत्यम् = ऋतम्; ब्रूहि = वद, साधुपदवीम् [साधूनां पदवी, ताम्] = सन्मार्गम्, अनुयाहि = अनुगच्छ, विद्वज्जनम् = पण्डितसमूहम्, सेवस्व = भज, मान्यान् = पूज्यान् (गुरुपित्रादीन्) मानय = पूजय, विद्विषोऽपि = रिपूनपि, अनुनय = प्रसादय, प्रश्रयम् = विनयम्, प्रख्यापय = प्रकटीकुरु, कीर्तिम् = समज्ञाम्, पालय = रक्ष दुःखिते = क्लेशेन पीडिते जने, दयाम् = कृपाम्, कुरु = विधेहि. एतत् = इदं सर्वम्, सताम् = सज्जनानाम्, चेष्टितम् = आचरणमस्तीति शेषः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

भावार्थः—तृष्णाच्छेदः, सहिष्णुता, अमदत्वं, पापेष्वनासक्तिः, सत्यकथनं, सन्मार्गानुसरणं, विद्वत्सेवा, मान्यजनसत्करणं, शत्रूणामप्यनुनयः, विनयप्रकटीकरणं, कीर्तिरक्षणं, दीनेषु करुणा च, इदमेव सदाचारस्वरूपं मानवकर्तव्यम्।

भाषार्थ—(हे मनुष्य!) लालच छोड़ो, सहनशक्ति रखो, अहंकारका परित्याग करो, पापमें अभिरुचि न रखो, सत्य बोलो, सत्पुरुषोंके मार्ग का अनुसरण करो, विद्वानोंकी सेवा करो, पूज्यजनोंका सम्मान करो, शत्रुओंको भी प्रसन्न रखो। नम्रता दिखाओ, कीर्तिकी सदा रक्षा करो और दुःखी लोगों पर कृपा करो (क्योंकि) सज्जन ऐसा ही करते हैं॥ ७८॥

महापुरुष प्रायः दुर्लभ होते हैं—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥७९॥

अन्वयः—मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः उपकारश्रेणिभिः त्रिभुवनं प्रीणयन्तः, परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य निजहृदि नित्यं विकसन्तः सन्तः कियन्तः सन्ति?

पदार्थ—मनसि = मनमें। वचसि = वाणीमें। काये = शरीरमें। पुण्यपीयूषपूर्णाः = पुण्यरूप अमृतसे भरे हुए। त्रिभुवनं = तीनों लोकोंको। उपकारश्रेणिभिः = उपकारोंकी पंक्तिसे। प्रीणयन्तः = प्रसन्न रखते हुए। नित्यं = सदा। परगुणपरमाणून् = दूसरोंके सूक्ष्म गुणोंको भी। पर्वतीकृत्य = पर्वतके समान बढ़ा-चढ़ाकर। निजहृदि विकसन्तः = अपने हृदयमें विकसित करते हुए। सन्तः = सज्जन व्यक्ति। (संसारमें) कियन्तः सन्ति = कितने हैं।

व्याख्या—मनसि = हृदये, वचसि = वाण्याम्, काये = देहे च पुण्यपीयूषपूर्णाः [पुण्यमेव पीयूषं तेन पूर्णाः] = सुकृतसुधाप्रपूरिताः। उपकारश्रेणिभिः [उपकारस्य श्रेणयः ताभिः] = हिताचरणपंक्तिभिः त्रिभुवनम् = [त्रयाणां भुवनानां समाहारः] = लोकत्रयम्, प्रीणयन्तः = प्रसादयन्तः, परगुणपरमाणून् [परेषां गुणाः, परमाश्च ते अणवः परमाणवः,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
परगुणानां परमाणवः, तान्]=इतरेषां सौजन्यादिगुणसूक्ष्मभागान्, पर्वतीकृत्य [अपर्वतान् पर्वतान् कृत्वा इति]=शैलानिव अतिवृहदाकारान् कृत्वा, निजहृदि=स्वकीयमनसि, विकसन्तः=हर्षानुभवं कृतवन्तः, सन्तः=सत्पुरुषाः, कियन्तः=कियत्संख्याकाः सन्ति ? अत्यल्पा एव वर्तन्ते इति तात्पर्यम्। मालिनी वृत्तम्।

भावार्थः—मनसा, वचसा, कर्मणा च सर्वेषामेव प्राणिनामुपकारकारिणः, सदा परेषां सूक्ष्मानपि गुणान् विशदीकृत्य हृदि धारयन्तः सज्जनाः जगति अंगुलिगणनीया एव भवन्ति।

भाषार्थ—मन, वाणी और शरीरमें सुकर्मरूपी अमृतसे परिपूर्ण, तीनों लोकोंका अनेक प्रकारके उपकारोंसे कल्याण करनेवाले और दूसरोंके थोड़ेसे भी गुणोंको सर्वदा पहाड़की तरह (बहुत बड़ा) मानकर अपने हृदयमें प्रसन्न होनेवाले सत्पुरुष (संसारमें) कितने हैं, (अर्थात् ऐसे सज्जन दुर्लभ हैं)। ॥ ७९ ॥

गुणवान् ही प्रशंसार्ह है—

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा,
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव।
मन्यामहे मलयमेव, यदाश्रयेण
कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः ! ॥ ८० ॥

अन्वयः—तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा किं, यत्र च आश्रिताः तरवः ते तरवः एव। (वयन्तु) मलयमेव (बहु) मन्यामहे, यदाश्रयेण कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः।

पदार्थ—तेन=उस, हेमगिरिणा=सोनेके पहाड़से। वा=अथवा। रजताद्रिणा=चाँदीके पहाड़से। किं=क्या लाभ। यत्राश्रिताः=जिसपर स्थित। तरवः=वृक्ष। ते एव तरवः=(जो थे) वे ही वृक्ष रहगये। मलयमेव=मलयाचलको ही। मन्यामहे=(हम) पर्वत समझते हैं। यदाश्रयेण=जिसमें स्थित होनेसे। कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि=कङ्कोल, नीम और कुटजके वृक्ष भी। चन्दनाः स्युः=चन्दन हो गये।

व्याख्या—तेन हेमगिरिणा=सुमेरुपर्वतेन रजताद्रिणा=कैलासपर्वतेन वा किम्=को लाभः ? न कोऽपीति तात्पर्यम्, यत्र च=यस्मिन् स्थले, आश्रिताः=संस्थिताः, तरवः=पादपाः, त एव=साधारणाः पूर्ववदेव, तरवः=वृक्षाः सन्ति, वयम् मलयमेव=मलयाचलमेव, मन्यामहे=सम्मानदृशा अवलोकयामः, यदाश्रयेण=यत्प्रदेशसंस्थानेन कारणेन, कङ्कोलनिम्बकुटजाः=[कङ्कोलाश्च निम्बाश्च कङ्कोलनिम्बाः, कङ्कोलनिम्बाश्च कुटजाश्च कङ्कोलनिम्बकुटजाः]=तत्तन्नामका वृक्षाः चन्दनाः=चन्दनतरुसदृशाः सुगन्धयुताः स्युः=भवेयुः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

भावार्थः—गुणवद्भिरपि तैः को लाभो यैः स्वाश्रिता गुणवन्तो न कृताः, स तु बहुमानपात्रं येन स्वाश्रिता निर्गुणा अपि गुणवन्तो विहिताः। यथा मलयाचल एवादरणीयो यत्र सर्वं एव वृक्षाश्चन्दनत्वं यान्ति सुवर्णमयेन मेरुणा रजतमयेन कैलाशादिना वा को लाभः यत्र नैकोऽपि तरुः सुवर्णमयो रजतमयो वा जातः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भाषार्थ—उस सुवर्णके पहाड़ (सुमेरु) या चाँदीके पर्वत (कैलाश) से क्या लाभ जिनपर उगे हुए पेड़ वैसेही पेड़ रह जाते हैं। हम तो उस मलयाचलको अधिक महनीय मानते हैं, जिसका आश्रय लेनेसे कङ्कोल (शीतल चीनी), नीम एवं कुटज (पत्थर फूल) के वृक्ष भी चन्दन (सुगन्धिमय) हो जाते हैं ॥ ८० ॥

धीरजन निर्धारित कार्यको पूर्ण ही करते हैं—

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवाः,
न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं
न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥ ८१ ॥

अन्वयः—देवाः महार्हैः रत्नैर्न तुतुषुः, भीमविषेण भीतिं न भेजिरे, सुधां विना विरामं न प्रययुः । धीराः निश्चितार्थात् न विरमन्ति ।

पदार्थ—देवाः=देवता लोग । महार्हैः रत्नैः=(समुद्रसे निकलते हुए) बहुमूल्य रत्नोंसे । न तुतुषुः=सन्तुष्ट नहीं हुए । भीमविषेण=(और) भयंकर विषसे । भीतिं न भेजिरे=भयको भी नहीं प्राप्त हुए । सुधां विना=अमृतको पाये विना । विरामं न प्रययुः= (मन्थनसे) विरत नहीं हुए । धीराः=धैर्यशाली पुरुष । निश्चितार्थात्=निश्चित प्रयोजनसे । न विरमन्ति=विरत नहीं होते ।

व्याख्या—देवाः=अमराः (समुद्रमन्थनावसरे) महार्हैः=बहुमूल्यैः (महाब्धेरिति पाठे ते महाब्धेः=महतः क्षीरसिन्धोः, तत्सम्बन्धिभिरिति व्याख्या कार्या) रत्नैः=चतुर्दशमणिभिः, न तुतुषुः=न सन्तुष्टिमापुः, भीमविषेण=भयङ्करेण कालकूटाख्यगरलेन, भीतिम्=भयं, न, भेजिरे=लेभिरे, सुधाम्=पीयूषम् विना=अन्तरेण, विरामम्=स्वकार्याद्विरतिम् न प्रययुः=जग्मुः, हि=युक्तम् एवैतद्, यत् धीराः=मनस्विनः, निश्चितार्थात् [निश्चितोऽर्थः निश्चितार्थः तस्मात्]=प्रतिज्ञातविषयात् न विरमन्ति=न पराङ्मुखा जायन्ते, स्वनिर्णीतमभीष्टं प्रतिपाद्य एव विरमन्तीति भावः । उपजातिः वृत्तम् ।

भावार्थः—देवाः सुधालब्धये सागरं ममन्थुः, तत्र मध्य एव महार्हाणि रत्नान्याविर्बभूवुर्भयङ्करं गरलं च, किन्तु ते यावत्सुधां न लेभिरे तावन्न रत्नैस्तुतुषुर्नच गरलेन बिभ्युः । धीराणां स्वभावोऽयं यत्ते प्रारब्धस्य कार्यस्य समाप्तिं यावन्न मुञ्चन्ति ।

भाषार्थ—सभी देवता बहुमूल्य रत्नोंको पाकर भी सन्तुष्ट नहीं हुए और भयङ्कर विषसे भयभीत भी नहीं हुए, वे बिना अमृतकी प्राप्तिके समुद्र-मन्थनसे नहीं रुके । (क्योंकि) धैर्यशाली मनुष्य संकल्प की हुई अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिके बिना कभी अपने कार्यसे पराङ्मुख नहीं होते है ॥ ८१ ॥

मनस्वी व्यक्ति कार्यसिद्धि के लिये सुख-दुःख नहीं गिनते—

क्वचित्पृथ्वी शय्यः, क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः,
क्वचिच्छाकाहारः, क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्वचित्कन्थाधारी, क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥८२॥

अन्वयः—क्वचित्पृथ्वीशय्यः, क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः, क्वचिच्छाकाहारः, क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः (अस्ति), क्वचित्कन्थाधारी, क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरः (भवति), कार्यार्थी मनस्वी दुःखं न गणयति, सुखं च न (गणयति)।

पदार्थ—कार्यार्थी=कार्यसिद्धि चाहनेवाला। मनस्वी=विचारशील पुरुष। क्वचित्=कहीं। पृथ्वीशय्यः=भूमिपर ही सो जाता है। अपिच=और। क्वचित् पर्यङ्कशयनः=कहीं पलंगपर भी सोता है। क्वचित् शाकाहारः=कहीं शाक ही खाकर रह जाता है। अपि च=और। क्वचित् शाल्योदनरुचिः=कहीं चावलका भात खाना चाहता है। क्वचित् कन्थाधारी=कहीं गुदड़ी ही धारण कर लेता है। अपिच=और, क्वचित् दिव्याम्बरधरः=कहीं दिव्य (बहुमूल्य) वस्त्रोंको पहिनता है। (वह कार्य-सिद्धिके लिये) न सुखं गणयति=न सुखको गिनता है। न च दुःखम्=और न दुःखको।

व्याख्या—**कार्यार्थी**=कर्मणि प्रवृत्तः,**मनस्वी**=(प्रशस्तं मनोऽस्यास्तीति] धैर्यशाली मनुष्यः, **क्वचित्**=कुत्रचित् स्थले काले वा, **पृथ्वीशय्यः** [पृथ्वी शय्या यस्य सः]=भूमिशायी, **अपि च**=अन्यच्च, **क्वचित्**=कुत्रचित्, **पर्यङ्कशयनः** [पर्यङ्के शयनं यस्य सः]=मञ्चस्वापी, **क्वचित्**=कदाचित्, **शाकाहारः** [शाकम् आहारः यस्य सः]=शाकमात्रभोजी, **अपि च**=किञ्च क्वचित्, **शाल्योदनरुचिः**, [शाल्योदने रुचिः यस्य सः]=तण्डुलभक्तप्रियः, **क्वचित्**=कुत्रचित् **कन्थाधारी** [कन्थां धारयति तच्छीलः] अपि च, **क्वचित्**. **दिव्याम्बरधरः** [दिव्यम् अम्बरम् धरति=धारयति-इति]=महार्हवस्त्रधरः भवति एवं स **दुःखम्**=क्लेशम्, **न गणयति**=नानुभवति, **न च**, **सुखम्**=आनन्दम् अपेक्षते। **शिखरिणी छन्दः**।

भावार्थः—कार्यसाधनविधौ दृढेन मनसा प्रवृत्तः पुरुषः सुखं दुःखं वा न पश्यति, स तु कार्यसिद्धये देशकालानुसारं कण्टकाकीर्णायां भुवि स्वपिति महार्हे पर्यङ्केऽपि, सरसं नीरसं वा वस्तु भुनक्ति, जीर्णं बहुमूल्यं वा वस्त्रं परिदधाति, येन केनाप्युपायेन कार्यसाधनमेव तल्लक्ष्यं भवति।

भाषार्थ—कार्यकी सिद्धि चाहनेवाला मनस्वी पुरुष कहीं भूमि पर सोता है, तो कहीं पलङ्ग पर, कहीं साग खाता है तो कहीं धानके भातका आस्वाद लेता है, कहीं फटी गुदड़ी धारण करता है तो कहीं अत्यन्त सुन्दर वस्त्र पहनता है, (फिर भी वह) दुःख और सुखकी तनिक भी परवाह नहीं करता ॥८२॥

शील ही सर्वोत्कृष्ट भूषण है—

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता, शौर्यस्य वाक्संयमो,
ज्ञानस्योपशमः, श्रुतस्य विनयो, वित्तस्य पात्रे व्ययः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अक्रोधस्तपसः, क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता,

सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥८३॥

अन्वयः—ऐश्वर्यस्य सुजनता विभूषणं, शौर्यस्य वाक्संयमः (विभूषणं), ज्ञानस्य उपशमः (विभूषणं), श्रुतस्य विनयः (विभूषणम्), वित्तस्य पात्रे व्ययः (विभूषणं), तपसः अक्रोधः (विभूषणम्), प्रभवितुः क्षमा (विभूषणम्), धर्मस्य निर्व्याजता (विभूषणम्)। सर्वकारणमिदं शीलं सर्वेषामपि परं भूषणम्।

पदार्थ—ऐश्वर्यस्य विभूषणं=समृद्धिका आभूषण। सुजनता=सज्जनता है। शौर्यस्य=पराक्रमका (आभूषण), वाक्संयमः=वाणीका नियतरूपमें प्रयोग (है)। ज्ञानस्य=ज्ञानका (आभूषण), उपशमः=शान्ति है। श्रुतस्य=शास्त्रका (आभूषण), विनयः=नम्रता है। वित्तस्य=धनका (आभूषण), पात्रे व्ययः=सत्पात्रमें उसका विनियोग है। तपसः=तपस्याका (आभूषण), अक्रोधः=क्रोधका न होना है। प्रभवितुः=अधिकारी होनेका (आभूषण), क्षमा=सहनशीलता है। धर्मस्य=धर्मका (आभूषण); निर्व्याजता=निष्कपटता है। सर्वेषामपि=सभी (ऐश्वर्यादि तथा अन्य वस्तुओं) का। सर्वकारणं=सारा निदानभूत। इदं शीलं=यह शील (सत्स्वभाव)। परं भूषणम्=उत्कृष्ट आभूषण है।

व्याख्या—**ऐश्वर्यस्य**=स्वामित्वस्य, **विभूषणम्**=अलंकृतिः, **सुजनता**=सौजन्यम्। **शौर्यस्य**=पराक्रमस्य, **वाक्संयमः**=वचसां निग्रहः, **ज्ञानस्य**=वेदशास्त्रादिबोधस्य, (आभूषणम्) **उपशमः**=शान्तिः। **श्रुतस्य**=वेदादिश्रवणस्य, (विभूषणम्) **विनयः**=विनम्रता। **वित्तस्य**=धनस्य, भूषणम्, **पात्रे**=सत्पात्रे, **व्ययः**=दानकरणम्। **तपसः**=तपश्चर्यायाः, विभूषणम्, **अक्रोधः**=कोपाभावः। अनुद्वेग इति यावत्, **प्रभवितुः**=सामर्थ्यशालिनो जनस्य विभूषणम्, **क्षमा**=सहनशीलता। **धर्मस्य**=वेदोक्तकर्त्तव्यविशेषस्य, विभूषणम्; **निर्व्याजता**=कपटहीनता; अस्ति, किन्तु; **सर्वेषाम्**=निखिलानामपि पूर्वोक्तानाम् **परम्**=उत्तमम्; **सर्वकारणम्**; सर्वेषाम्=ऐश्वर्यादीनामखिलानाम्; कारणम्=प्रधानहेतुः **इदम्**=प्रसिद्धम्; **शीलम्**=सद्वृत्तम्; सदाचार इति यावत्, एव वर्तते। **शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्**।

भावार्थः—ऐश्वर्यं सौजन्येन, शूरत्वं मितभाषितया, ज्ञानं शान्त्या, श्रुतं विनयेन, धनं सत्पात्रेषु व्ययेन, तपोऽक्रोधेन, प्रभुत्वं क्षमया, धर्मश्च निश्छलतया शोभते। किन्तु शीलं नास्ति चेत् एतत्सर्वमपि निरर्थकं भवति, अतः एतेषामपि शोभासाधनमुत्कृष्टं शोभाधायकं शीलमेवादिकारणमस्ति।

भाषार्थ—सौजन्य ऐश्वर्यका, वाक्संयम शूरताका, शान्ति ज्ञानका, विनम्रता विद्याका, अनुकूल पात्रको दान देना धनका, कोपका न होना तपश्चर्याका, क्षमा सामर्थ्यशालीका और निष्कपटता धर्मका आभूषण है, परन्तु इन सभी (ऐश्वर्य आदि) का मूल कारण सदाचार ही सबका भूषण है॥ ८३॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

धीर पुरुष न्यायमार्ग से विचलित नहीं होते—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु, गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ ८४ ॥

अन्वयः—नीतिनिपुणाः निन्दन्तु, यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु, यथेष्टं वा गच्छतु, मरणमद्यैव वा अस्तु, युगान्तरे वा अस्तु । धीराः न्याय्यात्पथः पदं न प्रविचलन्ति ।

पदार्थ—नीतिनिपुणाः = व्यवहारमें कुशल व्यक्ति। निन्दन्तु = निन्दा करें । वा स्तुवन्तु = अथवा प्रशंसा करें । लक्ष्मीः = संपत्ति । समाविशतु = आवे । वा यथेष्टं गच्छतु = अथवा जहाँ चाहे जाय । मरणं = मृत्यु । अद्यैव अस्तु = आज ही हो जाय । वा युगान्तरे = अथवा युगोंके बाद हो। (किन्तु) धीराः = मनस्वी व्यक्ति । न्याय्यात्पथः = न्यायोचितमार्गसे । पदं = पगभर भी । न प्रविचलन्ति = विचलित नहीं होते ।

व्याख्या—**नीतिनिपुणाः** [नीतौ निपुणाः] = नीतिशास्त्रकुशलाः विद्वांसः, **निन्दन्तु** = प्रशंसां मा कुर्वन्तु, **यदि वा** = अथवा, **स्तुवन्तु** = स्तुतिं कुर्वन्तु, **लक्ष्मीः** = सम्पत्तिः **समाविशतु** = सम्यगागच्छतु, **वा** = उत, **यथेष्टम्** = स्वेच्छया, **गच्छतु** = अपसरतु, **मरणम्** = मृत्युः, **अद्यैव** = सम्प्रत्येव, **अस्तु** = भवतु **वा** = आहोस्वित, **युगान्तरे** = अपरस्मिन् युगे अस्तु, (परम्) **धीराः** = धैर्यशीलाः जनाः, **न्याय्यात्** = समीचीनात्, **पथः** = मार्गात्, **पदम्** = चरणमात्रम् अपि, न **प्रविचलन्ति** = न इतस्ततो भवति, न्यायमार्गमेवानुसरन्तीति भावः । **वसन्ततिलका वृत्तम्** ।

भावार्थः—मनस्विजनाः केनचित्कृताया निन्दाया स्तुतेर्वा अपेक्षां न कुर्वन्ति, लक्ष्मीर्लभ्यते वा न लभ्यते इत्यपि नापेक्षन्ते, मृत्युमप्युपेक्षन्ते किन्तु कदापि न्यायोचितान्मार्गात् पराङ्मुखा न भवन्ति । तदेव कुर्वन्ति यन्न्यायोचितं भवति ।

भाषार्थः—धैर्यशील मनुष्योंको, नीतिमें कुशल विद्वान् निन्दा करें या प्रशंसा करें, इच्छानुसार सम्पत्ति आवे अथवा दूर चली जाय (न आवे), आजही मृत्यु हो जाय या दूसरे युगमें (बहुत दिनोंके बाद) हो, परन्तु वे न्यायोचित मार्ग से एक पग भी विचलित नहीं होते हैं ॥८४॥

भाग्य ही मनुष्योंकी उन्नति-अवनतिमें कारण है—

भग्नाशस्य करण्डपिण्डिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा
कृत्वाखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः ।
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा,
लोकाः ! पश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् ॥ ८५ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—भग्नाशस्य करण्डपिण्डिततनोः क्षुधा म्लानेन्द्रियस्य भोगिनः मुखे आखुः नक्तं विवरं कृत्वा स्वयं निपतितः। असौ (तु) तत्पिशितेन तृप्तः सन् तेनैव पथा सत्वरं यातः। हे लोकाः! पश्यत हि दैवमेव नृणां वृद्धौ क्षये च कारणम् अस्ति।

पदार्थ—लोकाः=सज्जनो! पश्यत=देखिये। आखुः=चूहा। नक्तं=रात्रि में। विवरं कृत्वा=छेद करके। भग्नाशस्य=(भोजनकी प्राप्ति में) निराश हुए। करण्डपिण्डित-तनोः=(मदारीकी) पिटारीमें सिकुड़कर ठैठे हुए। क्षुधा=भूखके कारण। म्लानेन्द्रियस्य=मुरझाई हुई इन्द्रियोंवाले। भोगिनः मुखे=सर्पके मुख में। स्वयं निपतितः=अपने आप जा पड़ा। असौ=वह (सर्प)। तत्पिशितेन=उस चूहेके मांससे। तृप्तः=तृप्त होकर। तेनैव पथा=उसी मार्ग (चूहेके बनाये हुये बिल) से। सत्वरं यातः=शीघ्र निकल गया। हि=क्योंकि। दैवम् एव=भाग्य ही। नृणां=मनुष्योंकी। वृद्धौ क्षये च=समृद्धि और विनाशमें। कारणम्=हेतु होता है।

व्याख्या—हे लोकाः!=मनुष्याः! (यूयम्) **पश्यत**=अवलोकयत। **आखुः**=उन्दुरुः, **नक्तम्**=निशि, **विवरम्**=बिलम्, **कृत्वा**=निर्माय, **भग्नाशस्य** [भग्ना आशा यस्य सः, तस्य]=नष्टमनोरथस्य निराशस्येत्यर्थः। **करण्डपिण्डिततनोः** [करण्डे पिण्डिता तनुः यस्य तथाभूतस्य]=वंशपेटके वर्तुलितदेहस्य, **क्षुधा**=बुभुक्षया, **म्लानेन्द्रियस्य** [म्लानानि=शक्तिहीनानि इन्द्रियाणि=चक्षुरादीनि करणानि यस्य, तादृशस्य] **भोगिनः**=पन्नगस्य, **मुखे**=वदने, **स्वयम्**=स्वतः, **निपतितः**=गतः, प्राविशदिति यावत्। **असौ**=उरगः, **तत्पिशितेन**=मूषकमांसेन, **तृप्तः**=सन्तुष्टः सन् **तेनैव**=आखुनिर्मितबिलेनैव, **पथा**=मार्गेण, **यातः**=गतः, यथोद्देशं प्राप्त इति यावत्। (अतः) **हि**=नूनम्, **दैवमेव**=दिष्टमेव **नृणाम्**=जनानाम् **वृद्धौ**=लाभे सुखे वा, **क्षये**=अवनतौ, दुःखे वा, च **कारणम्**=हेतुः भवतीति शेषः। **शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।**

भावार्थ—कश्चित्सर्प आहितुण्डिकस्य पेटायां कुण्डलितः बुभुक्षया पीडितोऽतिष्ठत्, केनचिच्च मूषकेण भक्ष्याशया स्वदंष्ट्राभिः पेटां विदार्यान्तर्गतम्। तत्र गतो मूषिकः सर्पेण भक्षितः तत्कृतविवरद्वारेण बहिर्निर्गम्य पलायितं च। भोजनविषये भग्नाशस्य सर्पस्य प्रयत्नं विनैव क्षुन्निवृत्तिं बन्धनमुक्तिं च तथा भक्ष्याशया कृतप्रयत्नस्याखोर्विनाशं च दृष्ट्वा निश्चीयते यत् प्राणिनां सम्पत्तौ विपत्तौ च दैवमेव कारणं भवति।

भाषार्थ—निराश, पिटारीमें दबी हुई देहवाले और भूखसे अत्यधिक कृश, सर्पके मुँहमें चूहा अपने आप (पिटारी में) छेद करके भीतर चला गया, तथा साँप उसीके मांससे क्षुधाकी तृप्ति करके उसी छेद (बिल) से बाहर निकल गया। हे मनुष्यों! देखो भाग्य ही मनुष्यकी अभिवृद्धि और विनाशका प्रधान कारण है॥८५॥

महान् शत्रु और उत्कृष्ट बन्धु—

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—हि आलस्यं मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः। उद्यमसमो बन्धुर्नास्ति, यं कृत्वा नाऽवसीदति।

पदार्थ—आलस्यं हि = आलस्य तो। मनुष्याणां = मनुष्योंका। शरीरस्थः = देहमें स्थित। महान् रिपुः = महान् शत्रु है। उद्यमसमः = उद्योगके समान (दूसरा कोई)। बन्धुः न = बन्धु नहीं है। (क्योंकि) यं कुर्वाणः = जिस (उद्योग) को करता हुआ। न अवसीदति = कभी नष्ट नहीं हो पाता।

व्याख्या—हि = नूनम् **आलस्यम्** = कर्मस्वप्रवृत्तिः, **मनुष्याणाम्** = नराणाम्, **शरीरस्थः** = विग्रहस्थितः, **महान्** = प्रबलः, **रिपुः** = शत्रुः, (अस्ति)। **उद्योगसमः** [उद्योगेन = पुरुषार्थेन, समः = तुल्यः] **अन्य** = अपरः, **बन्धुः** = आत्मीयो **नास्ति** = न वर्तते, (यतः) यं **कुर्वन्** = कार्यं कुर्वन् **मनुष्यः**, **न अवसीदति** = न दुःखमेति, सुखमेवानुभवतीत्यर्थः। **अनुष्टुब्वृत्तम्**।

भावार्थ—देहाद्बहिःस्था रिपवोऽपि कार्यं निघ्नन्ति। आलस्यं तु देहान्तर्गतो रिपुः तत् सालसेन कथं सिद्धिर्लभ्येत। उद्योगश्च सर्वदा साहाय्यमाचरति बन्धुरिव, यतोहि कार्यं कुर्वतस्तत्सिद्धेराशा भवति, अकुर्वतस्तु कथं तत्प्रसक्तिः। अतः आलस्यं विहाय सोद्योगेन सर्वदा भाव्यम्।

भाषार्थ—अकर्मण्यता निश्चय ही मनुष्योंका, देहमें ही रहनेवाला प्रबल शत्रु है। पुरुषार्थके समान सबका कोई मित्र भी नहीं है जिसे करनेसे वह कभी दुःखका अनुभव नहीं करता ॥८६॥

दुःखके बाद सुख अवश्य आता है—

छिन्नोऽपि रोहति तरुः, क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न विप्लुता लोके ॥८७॥

अन्वय—तरुः छिन्नोऽपि (पुनः) रोहति, चन्द्रः क्षीणोऽपि पुनरुपचीयते, इति विमृशन्तः सन्तो लोके विप्लुता अपि न सन्तप्यन्ते।

पदार्थ—छिन्नः अपि तरुः = कटा हुआ भी वृक्ष। पुनः रोहति = फिर अंकुरित हो जाता है। क्षीणोऽपि चन्द्रः = (कलाओंसे) क्षीण हुआ भी चन्द्रमा। पुनः उपचीयते = फिर बढ़ता है। इति विमृशन्तः = ऐसा विचारते हुये। सन्तः = सज्जन। दुःखेषु = विपत्तियोंमें। न सन्तप्यन्ते = सन्तप्त नहीं होते।

व्याख्या—**छिन्नः** = कर्तितोऽपि भिन्नोऽपि वा **तरुः** = शाखी; **पुनः** = भूयः, **रोहति** = अङ्कुरितो भवति, **क्षीणोऽपि** = कृशोऽपि, कृष्णपक्षे इति भावः, **चन्द्रः** = शशी, **पुनः** = भूयः, **उपचीयते** = वृद्धिमधिगच्छति, शुक्लपक्षे इति ज्ञेयम्। **इति** = एवम्, **विमृशन्तः** = परिशीलयन्तः, **सन्तः** = सज्जनाः, दुःखेषु = विपत्सु, **न सन्तप्यन्ते** = नहि दुःखिता भवन्ति। **आर्यावृत्तम्**।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावार्थः—छिन्नस्य तरोः पुनरंकुरणमिव कलाक्षीणस्येन्दोः पुनर्वृद्धिरिव दुःखानन्तरं सुखं सर्वैर्लभ्यमेवेति विचार्य सज्जनाः विपत्स्वपि धीराः भवन्ति ।

भाषार्थ—वृक्ष (कुल्हाड़ी आदिसे) काटा जानेपर भी फिर पनपता है और चन्द्रमा (कृष्णपक्षमें) घट जानेपर भी फिर (शुक्ल पक्ष में) बढ़ता है—इस प्रकार विचार करनेवाले मनुष्य (सत्पुरुष) विपत्तिके समय व्याकुल नहीं होते हैं ॥८७॥

पुरुषार्थसे भाग्यकी बलवत्ता—

नेता यस्य बृहस्पतिः, प्रहरणं वज्रं, सुराः सैनिकाः,
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किल हरेरैरावतो वारणः ।
इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलभिद् भग्नः परैः सङ्गरे,
तद्युक्तं ननु दैवमेव शरणं, धिग्धिग्वृथा पौरुषम् ॥८८॥

अन्वयः—यस्य नेता बृहस्पतिः, प्रहरणं वज्रं, सुराः सैनिकाः, दुर्गः स्वर्गः, हरेरनुग्रहः किल, वारणः ऐरावतः–इत्यंश्वर्यबलान्वितोऽपि बलभित् परैः सङ्गरे भग्नः । तत् युक्तं दैवमेव शरणं वृथा पौरुषं धिक् धिक् ।

पदार्थ—यस्य = जिसके । बृहस्पतिः = देवगुरु । नेता = नायक हैं । वज्रं प्रहरणं = वज्र आयुध है । सुराः सैनिकाः = देवगण योद्धा हैं । स्वर्गो दुर्गः = स्वर्ग किला है । हरेः अनुग्रहः किल = भगवान् विष्णु की कृपा है । ऐरावतः वाहनः = ऐरावत हाथी वाहन है । इति = इस प्रकार । ऐश्वर्यबलान्वितः अपि = समृद्धिः और शौर्यसे युक्त भी । बलभित् = इन्द्र । सङ्गरे = युद्धमें । परैः भग्नः = शत्रुओंसे हार गया । तद्व्यक्तम् = इसलिये स्पष्ट है । ननु दैवम् एव = निश्चयपूर्वक भाग्य ही । शरणं = रक्षक है । वृथा पौरुषं = व्यर्थ के पुरुषार्थको । धिक् धिक् = धिक्कार है ।

व्याख्या—**यस्य** = देवेन्द्रस्य, **नेता** = मार्गनिर्देशकः, **बृहस्पतिः** = सुरगुरुः, **प्रहरणम्** = आयुधम्, **वज्रम्** = कुलिशम्, **सैनिकाः** = योद्धारः, **सुराः** = अमराः, **दुर्गम्** = शत्रुभिरगम्यं रक्षास्थानम्, **स्वर्गः** = त्रिदिवः, (यस्योपरि) **किल** = निश्चयेन, **हरेः** = विष्णोः, **अनुग्रहः** = कृपाभाव इति यावत्, **वारणः** = कुञ्जरः, **ऐरावतः** = तन्नामा गजेन्द्रः **इति** = एवं पूर्वोक्तप्रकारेण, **ऐश्वर्यबलान्वितः**, [ऐश्वर्यं च बलञ्च ऐश्वर्यबले ताभ्याम् अन्वितः] = विभवविक्रमसंयुतः, **अपि बलभिद्** [बलं भिनत्ति इति] बलाख्यदैत्यनिषूदनः, इन्द्रः इति यावत् । **सङ्गरे** = युद्धे, **परैः** = रिपुभिः, **भग्नः** = विजितः, **तत्** = तस्मात् कारणात्, **इदम्**, **व्यक्तम्** = सुस्पष्टम्, यत्, **ननु** = नूनम्, **दैवम्** = दिष्टमेव = **शरणम्** = रक्षकम्, अस्ति **वृथा** = निरर्थकम्, **पौरुषम्** = बलम्, **धिग-धिग्** = भूयो भूयो धिक्कारोऽस्तु । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

भावार्थः—दैवे सहायके सत्येव पुरुषार्थः सफलो भवति नान्यथा, प्रत्यक्षमेवात्र निदर्शनं सुरेन्द्रस्य, यत् सर्वोचितसाधनयुक्तोऽपि ... शत्रुभिः पराजितः ... कर्तुमकर्तु-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्यथाकर्तुं वा समर्था देवा योद्धारः स्वर्गो दुर्गः, त्रिभुवनगुरोर्हरेः, कृपा, ऐरावतो हस्ती इत्येकैकमपि अनुत्तमं, तथापि दैत्यैः स पराजितः, भाग्यं नासीत् पुरुषार्थे तु तस्य न कापि न्यूनता।

भावार्थ—जिसके स्वयं वृहस्पति (देवगुरु) ही मार्ग-निर्देशक हैं, वज्र शस्त्र है, समस्त देवता सैनिक हैं, स्वर्गलोक ही किला है, जिसपर साक्षाद् विष्णुभगवान्‌की दया दृष्टि है, गजेन्द्र ऐरावत जिसका हाथी हैं—ऐसे ऐश्वर्य एवं पराक्रमसे सम्पन्न देवेन्द्र भी जब संग्राममें अपने शत्रुओंसे पराजित हो जाते हैं तो इससे यही स्पष्ट होता है कि भाग्य ही केवल रक्षा करनेवाला है, व्यर्थके पौरुषको बार-बार धिक्कार है ॥ ८८ ॥

विचारपूर्वक ही कार्य करना चाहिये—

कर्मायत्तं फलं पुंसां, बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता ॥ ८९ ॥

अन्वयः—[यद्यपि–] पुंसां फलं कर्मायत्तं, बुद्धिः (च) कर्मानुसारिणी [भवति], तथापि सुधिया सुविचार्यैव कुर्वता भाव्यम् ।

पदार्थ—पुंसां = (यद्यपि) पुरुषोंका । फलं = (सुख या दुःखरूप) फल । कर्मायत्तं = कर्मोंके अधीन है । बुद्धिः = बुद्धि भी । कर्मानुसारिणी = कर्मोंके अनुसार ही चलनेवाली (होती है.) तथापि = तब भी । सुधिया = बुद्धिमान्‌को । सुविचार्यैव कुर्वता भाव्यम् = अच्छी प्रकार विचारकर कार्य करनेवाला ही होना चाहिये ।

व्याख्या—(यद्यपि) पुंसाम् = नराणाम्, फलम् = सुखदुःखादिरूपः परिणामः, कर्मायत्तम्, [कर्मणः = आयत्तम्, तत्] = प्रारब्धाधीनम्, तथा बुद्धिः = मतिः, कर्मानुसारिणी [कर्म = पूर्वजन्मनि कृतं कार्यम्, अनुसरति = अनुगच्छति तच्छीला] भवति तथापि = एवं सत्यपि, सुधिया = कोविदेन; सुविचार्यैव = सुष्ठुरूपेण चिन्तयित्वैव; कुर्वता = कार्यशीलेन; भाव्यम् = भवितव्यम् । अनुष्टुब्वृत्तम् ।

भावार्थः—यद्यपि पूर्वकर्मानुरूपैव बुद्धिः सत्कर्मणि-असत्कर्मणि वा प्रवर्तते, तदनुसारमेव च फलं सुखदुःखात्मकं लभ्यते तथापि बुद्धिमता यदपि कर्तव्यं तत्सुविचार्यैव ।

भावार्थ—यद्यपि मनुष्योंको सुख दुःखकी उपलब्धि (पूर्वजन्ममें किये गये) कर्मके अनुसार ही होती है और बुद्धि भी उसीके अनुकूल कार्य करती है, फिर भी विद्वान्‌को सोच-विचारकर ही कार्य करनेवाला होना चाहिए ॥ ८९ ॥

भाग्यहीनके लिये सर्वत्र विपत्ति ही है—

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्तापितो मस्तके,
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः,
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥ ९० ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः मस्तके सन्तापितः सन् अनातपं देशं वाञ्छन् विधिवशात्तालस्य मूलं गतः। तत्रापि पतता (तालस्य) महाफलेन अस्य शिरः सशब्दं भग्नं, प्रायो यत्र भाग्यरहितो गच्छति तत्रैव आपदो यान्ति।

पदार्थ—खल्वाटः=गंजा। दिवसेश्वरस्य किरणैः=सूर्यकी किरणोंसे मस्तके संतापितः=माथेपर संतप्त हुआ। अनातपं देशं वाञ्छन्=घाम रहित (छायावाले) स्थानकी इच्छावाला। विधिवशात्=भाग्यवश। तालस्य मूलं गतः=ताड़की जड़में गया। तत्रापि=वहाँ भी। पतता महाफलेन=गिरते हुए बड़ेसे ताड़के फलसे। अस्य शिरः=इस (गंजे) का शिर। सशब्दं भग्नम्=ध्वनि करते हुए फूट गया। प्रायः अधिकतर। भाग्यरहितः=भाग्यहीन व्यक्ति। यत्र गच्छति=जहाँ जाता है, आपदः=आपत्तियाँ। तत्रैव यान्ति=वहीं जाती हैं।

व्याख्या—खल्वाटः=खलितः-निष्केशशिराः, दिवसेश्वरस्य [दिवसस्य ईश्वरः, तस्य]=सूर्यस्य, किरणैः=मरीचिभिः, मस्तके=मूर्ध्नि, सन्तापितः=सम्पीडितः सन्, अनातपम्=छायायुक्तं प्रदेशम्, वाञ्छन्=अभिलषन् विधिवशात्=दैववशात्, तालस्य =एतन्नामकवृक्षस्य मूलम्=अधोभागे, गतः=सम्प्राप्तः, (किन्तु) तत्रापि=तस्मिन् स्थलेऽ पतता=पादपाद् भ्रश्यता, महाफलेन=बृहत्फलेन, अस्य (खल्वाटस्य) शिरः=मस्तकम् सशब्दम् [शब्देन सहितं यथा स्यात्तथा]=पटत् इति ध्वनिं कुर्वत्, भग्नम्=स्फुटितम्। प्रायः=बहुशः, भाग्यरहितः, [भाग्येन रहितः]=मनुष्यः, यत्र=यस्मिन् मार्गे गच्छति= याति, तत्रैव=तस्मिन्नेव स्थले, आपदः=विपत्तयः, यान्ति=गच्छन्ति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

भावार्थः—दुर्दैवदूषितान्नरान् सर्वत्र विपदः पीडयन्ति। यथा कश्चित्खल्वाटः सूर्यताप-संतप्तश्छायामाकांक्षन् यदा तालमूले उपविष्टस्तदैव वेगेन उपरितः पतता तालफलेन तस्य मस्तकं स्फुटितम्। दुर्भगोऽसौ संतापात् त्राणेच्छया तत्र गतस्तत्र तु मृत्युरैव तस्य समभूत्।

भावार्थ—मस्तकपर पड़ती हुई सूर्यकी किरणोंसे व्याकुल होकर गञ्जा (खल्वाट, जिसके सिरके बाल बिल्कुल झड़ गए हों) मनुष्य छायाको ढूँढ़ता हुआ संयोगवश ताड़के पेड़के नीचे पहुँच गया। (किन्तु) वहाँपर भी वृक्ष गिरता हुआ ताड़का फल 'फटाक्' से उसके शिरपर गिरा और शिर फटकर वह मर गया। भाग्यहीन व्यक्ति जहाँ भी जाते हैं आपत्तियाँ भी वहीं पहुँच जाती हैं॥ ९०॥

पुनः भाग्यको बलवत्ताका निदर्शन—

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं,
गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम्।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां,
विधिरहो! बलवानिति मे मतिः॥ ९१॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—शशिदिवाकरयोः ग्रहपीडनं, गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनं मतिमतां च दरिद्रतां विलोक्य 'अहो ! विधिः बलवान्' इति मे मतिः (भवति)।

पदार्थ—रविनिशाकरयोः=सूर्य और चन्द्रमाका। ग्रहपीडनं=ग्रह (राहु) द्वारा सताया जाना। गजभुजङ्गमयोः अपि=हाथी और सर्पका भी। बन्धनम्=(वशमें करके) बाँधा जाना। मतिमतां च=और बुद्धिमानोंकी। दरिद्रतां=दरिद्रावस्थाको। विलोक्य=देखकर। विधिः बलवान्=अहो ! भाग्य ही बलवान् है। इति मे मतिः=ऐसा मैं समझता हूँ।

व्याख्या—रविनिशाकरयोः [रविश्च निशाकरश्च रविनिशाकरौ, तयोः]=सूर्याचन्द्रमसोः, ग्रहपीडनम् [ग्रहेण पीडनम्]=राहुद्वारा ग्रसनम्, गजभुजङ्गमयोः, [गजश्च भुजङ्गमश्च तयोः]=हस्तिसर्पयोः अपि बन्धनम्=नियमनम्, मतिमताम्=[मतिरस्ति येषां ते मतिमन्तः, तेषां] धीमतां पुरुषाणाञ्च, दरिद्रताम्=निर्धनताम्, विलोक्य=दृष्ट्वा, अहो=आश्चर्यम्, विधिः=नियतिः, बलवान्=शक्तिशाली, इति=एतादृशी, मे=मम कवेः, मतिः=बुद्धिः निश्चय इति यावत्, भवति। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्।

भावार्थः—आकाशचारिणौ तेजस्विनौ च सूर्याचन्द्रमसौ छायाग्रहेण राहुणा ग्रस्येते। स्वच्छन्दं वने विहरन्तो बलिनो गजा विषधरा नागाश्च जनैः वशीक्रियन्ते। युक्तिविदोऽपि क्वचिद्दारिद्र्यमनुभवन्ति इति दृष्ट्वा मन्ये भाग्यमेव सर्वतोऽधिकबलशालीति, तद् यं यथा वाञ्छति तथा स्थापयति।

भाषार्थ—सूर्य और चन्द्रमाका राहु ग्रहके द्वारा ग्रस्त होना, गज और सर्पका भी बन्धनमें फँस जाना तथा विद्वानोंकी निर्धनताको देखकर मुझे यही लगता है कि भाग्य ही शक्तिशाली है ॥ ९१ ॥

अनुचितकारी विधाता—

सृजति तावदशेषगुणाकरं
पुरुषरत्नमलङ्करणं भुवः
तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चे-
दहह ! कष्टमपण्डितता विधेः ॥९२॥

अन्वयः—(विधिः) अशेषगुणाकरं भुवः अलङ्करणं पुरुषरत्नं तावत् सृजति, तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चेत् अहह ! विधेः अपण्डितता, (इति) कष्टम्।

पदार्थ—अशेषगुणाकरं=सम्पूर्णगुणोंकी खान। भुवः अलंकरणं=(और) पृथ्वीकी शोभा बढ़ानेवाले। पुरुषरत्नं=नरश्रेष्ठको। सृजति=उत्पन्न करता है। तदपि=फिरभी। तत्=उसे। क्षणभङ्गि=शीघ्र नष्ट होनेवाला। करोति चेत्=यदि करता है तो। अहह विधेः=अहो ! विधाताकी। अपण्डितता=मूर्खता। कष्टम्=कष्ट देती है।

व्याख्या=विधिः=विधाता, अशेषगुणाकरम् [अशेषाश्च ते गुणाः अशेषगुणाः, तेषामाकरः]=सकलगुणनिधानम्, भुवः=वसुधायाः, अलङ्करणम्=भूषणम्, शोभावर्द्ध-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिति यावत् । पुरुषरत्नम् [पुरुषेषु रत्नम्, तत्] = नरश्रेष्ठं, तेजस्विनमिति तात्पर्यम् । तावत् सृजति = निर्माति, तदपि = तथापि, तत् = नररत्नं क्षणभङ्गि = [भङ्गोऽस्यातीति भङ्गि, क्षणेन भङ्गि इति] = तत्क्षणविनाशशीलं, अल्पायुरिति यावत्, करोति चेत् = यदि विदधाति, तदा, अहह = महा कष्टकरम् असह्यं वा विधेः = ब्रह्मणः अपण्डतता = मूढता, इतीदमेव चिन्तनं कष्टम् = दुःखकरम्, भवतीति शेषः । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।

भावार्थः = विधाता यदि गुणवन्तं कंचिन्नरमुत्पादयति स तेन चिरजीवी कर्तव्यः । स्वल्पायुषस्तस्य सर्जनरूपमपाण्डित्यं विधातुः सर्वेषां कृते कष्टकरं भवति ।

भाषार्थ—यह अत्यन्त कष्टकी बात है तथा ब्रह्माकी कितनी मूर्खता है कि वह पहले तो सभी श्रेष्ठ गुणोंकी खान और धरतीकी शोभा बढ़ानेवाले पुरुषरत्नोंको उत्पन्न करता है, किन्तु फिर उनको क्षण भरमें ही विनष्ट होनेवाला बना देता है। जब ब्रह्माने पुरुषरत्नोंका निर्माण करना है तो उन्हें चिरजीवी भी बनाना चाहिए ताकि दीर्घकालतक वे जगत्की शोभा बढ़ा सकें ॥ ९२ ॥

भाग्यरेखा को कोई नहीं मेट सकता—

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं,
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा, सूर्यस्य किं दूषणम् ।
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे, मेघस्य किं दूषणं,
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥९२॥

अन्वय—यदा करीरविटपे पत्रं नैव (तर्हि) वसन्तस्य दोषः किं ? । यदि उलूको दिवापि न अवलोकते (तर्हि) सूर्यस्य दूषणं किं ? यदि चातकमुखे धाराः नैव पतन्ति (तर्हि) मेघस्य दूषणं किं ? यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ! ॥

पदार्थ—यदा = यदि । करीरविटपे = करीरके वृक्ष में । पत्रं नैव = पत्ते नहीं आते । (तो) किं वसन्तस्य दोषः = क्या वसन्तका दोष है ? यदि उलूकः = यदि उल्लू । दिवा अपि = दिनमें भी । न अवलोकते = नहीं देखता । किं सूर्यस्य दूषणं = (तो) क्या वह सूर्य का दोष है ? चातकमुखे = पपीहेके मुखमें । धारा नैव पतन्ति = वर्षाकी बूँदें नहीं गिरतीं । (तो) किं मेघस्य दूषणं = क्या मेघका दोष है ? विधिना = विधाताने । पूर्वं = पहिले । यत् = जो । ललाटलिखितं = भाग्यमें लिख दिया है । तन्मार्जितुं = उसको मिटानेके लिये । कः क्षमः = कौन समर्थ है ।

व्याख्या—यदा = यदीति तात्पर्यम्, करीरविटपे = एतन्नामकपादपशाखायाम्, पत्रम् = दलम्, नैव = नहि कदापि भवति, तर्हि अय वसन्तस्य = मधुमासस्य दोषः = अपराधः किम् = ? नास्तीत्यर्थः, यदि = चेत् उलूकः = कौशिकः, दिवाऽपि = दिवसेऽपि, न अवलोकते = न विलोकयति, तर्हि इदं सूर्यस्य = भानोः दूषणम् = आगः किम् ? यदि = चेत्, चातकमुखे = सारङ्गपक्षिय आनने, धाराः, नैव पतन्ति = न गच्छन्ति तर्हिदम्,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेघस्य=पयोदस्य **दूषणम्**=दोषः **किम्** ? यतः, **विधिना**=परमेष्ठिना, **पूर्वम्**=जन्मनः पूर्वमेव, **यत्**=यत्किञ्चिदपि, **ललाटलिखितम्**=भालेऽक्षरमुट्टङ्कितम्, **तन्मार्जितुम्**=दूरीकर्तुं प्रोञ्छितुं वा, **कः**=कः पुरुषः **क्षमः**=समर्थः ? नहि कोऽपीत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

भावार्थः—विधात्रा यस्य भाग्ये यावल्लिखितं तावदेव तेन लभ्यते । न केनापि तत्र किंचिन्मात्रं परिवर्तयितुं शक्यते । निखिलेष्वपि वृक्षेषु पत्रपुष्पसमृद्धिमत्सु करीरे पत्रं नास्ति चेत्तत्र वसन्तः किं करोतु ? सर्वतः प्रकाशे प्रसृते दिवा यदि चक्षुषा नावलोक्यते उलूकेन, तत्र सूर्यस्य को दोषः । सर्वतो जलधाराभिः प्लावितायां भुवि चातकमुखे नैकोऽपि विन्दु पतितश्चेत्तत्र मेघस्य कोऽपराधः । नास्ति तत्तेषां भाग्ये ।

भाषार्थ—करीलकी शाखामें यदि पत्ते नहीं उत्पन्न होते तो उसमें वसन्तका क्या दोष ? यदि उल्लूको दिनमें भी न दिखाई पड़े तो उसमें सूर्यका क्या दोष ? यदि पपीहेके मुँह में वर्षाकी जलधारा न पड़े तो उसमें मेघका क्या दोष ? विधाताने जिस किसीके कपालपटल (भाग्यमें) पर जो कुछ भी लिख दिया है उसे भला कौन मिटा सकता है ॥९३॥

कर्मकी महिमा—

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगाः,
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ।
फलं कर्मायत्तं यदि किममरैः, किञ्च विधिना,
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥९४॥

अन्वयः—देवान् नमस्यामः । ननु तेऽपि हतविधेः वशगाः । विधिर्वन्द्यः, ननु सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः । यदि फलं कर्मायत्तम्, तर्हि चमरैः किं, विधिना च किं, तत्कर्मभ्यो नमः, येभ्यो विधिरपि न प्रभवति ।

पदार्थ—ननु देवान् नमस्यामः=क्या हम देवताओंको नमस्कार करें ? तेऽपि=वे भी तो । हतविधेः वशगाः=नीच विधाताके वशमें हैं । विधिः वन्द्यः=(तो फिर) विधाताको ही वन्दनाकी जाय ? सोऽपि=वह भी । प्रतिनियतकर्मैकफलदः=एकमात्र निश्चित (पुण्य-पाप रूप) कर्मोंका ही फल दे सकता है । यदि फलं कर्मायत्तं=यदि फल कर्मोंके ही अधीन है । किममरैः=(तो) देवताओंसे क्या ? किञ्च विधिना=और विधातासे क्या ? तत्कर्मभ्यो नमः=उन कर्मोंके लिये ही नमस्कार है । येभ्यः=जिनके विषयमें । विधिरपि=विधाता भी न प्रभवति=समर्थ नहीं है ।

व्याख्या—वयम् **देवान्**=महेन्द्रादीन् सुरान् **नमस्यामः**=नमस्कुर्मः, किन्तु **ते**=देवा अपि, **हतविधेः**=दुष्टस्य विधातुः, **नूनम्**=निश्चयेन [वशं गच्छन्तीति] **वशगाः**=अधीनाः (सन्ति), अतः, **विधिः**=परमेष्ठी **वन्द्यः**=वन्दनीयः, किन्तु **सोऽपि**=विधिरपि, **प्रतिनियतकर्मैकफलदः** [प्रतिनियतानि ...नि कर्माणि, एकं यत्फलम् एकफलं, प्रतिनियतकर्मणाम्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

एकफलं ददातीति]=तत्तन्निश्चितकर्मफलदाता, अस्ति, तथा यदि=चेत् फलम्=सिद्धिः, कर्मायत्तम्=कर्मानुसारि, तदा अमरैः=सुरैः किम्=को लाभः ? विधिना भाग्येन वा किम्=किं प्रयोजनम् ? नहि किमपीत्यर्थः। तत्=तस्मात् कारणात्, कर्मभ्यः=प्रयत्नरूपेभ्यः कार्येभ्यः, नमः=नमस्कारोऽस्तु, विधिरपि=साक्षाद्ब्रह्माऽपि दिष्टमपि वा, येभ्यः=कर्मभ्यः, न प्रभवति=नहि समर्थो भवति। शिखरिणी वृत्तम्।

भावार्थः—सर्वं कर्तुं समर्था ये मन्यन्ते तेऽपि देवा विधिमतिक्रम्य न किमपि कर्तुं शक्नुवन्ति। विधिश्च कर्मानुरूपमेव फलं दत्ते, न ततोऽधिकं न्यूनं वा। अतः देवान् विधिं चोपेक्ष्य कर्मभ्य एव नमस्यामः। यतोहि देवानां प्रभुरपि विधिः कर्मवशगः।

भाषार्थ—हम देवताओंको प्रणाम करते हैं, किन्तु ये भी तो नीच विधाताके आधीन हैं, इसलिये उस विधि (विधाता और भाग्य) को ही प्रार्थना करनी चाहिये। परन्तु वह भी तो केवल निश्चित कर्म (पूर्व जन्मके किए हुये) का ही फल देता है। अर्थात् फलकी प्राप्ति कर्मके अधीन है, (तब तो कर्म ही सबसे श्रेष्ठ हुआ), अतः उन देवों और विधिसे कोई प्रयोजन नहीं है, केवल उन कर्मोंको ही नमस्कार है जिनपर उस विधिका भी कुछ वश नहीं चलता है ॥९४॥

> ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे,
> विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे।
> रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः,
> सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥९५॥

अन्वयः—येन ब्रह्मा ब्रह्माण्डभाण्डोदरे कुलालवन्नियमितः, येन विष्णुः दशावतारगहने महासङ्कटे क्षिप्तः, येन रुद्रः कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः। (येन) सूर्यो नित्यमेव गगने भ्राम्यति। तस्मै कर्मणे नमः।

पदार्थ—येन=जिस (कर्म) ने। ब्रह्मा=(सृष्टिकर्त्ता) ब्रह्माको। ब्रह्माण्डरूप भाण्ड (बर्तन) के अन्दर। कुलालवत्=कुम्हारकी तरह, नियमितः=नियन्त्रित कर दिया है। येन=जिसने। विष्णुः=विष्णुको, दशावतारगहने=दश अवतार (मत्स्य कूर्म आदि) रूप भयङ्कर, महासंकटे=बड़े संकटमें। क्षिप्तः=डाल दिया। येन=जिसने, रुद्रः=शिवको, कपालपाणिपुटके=कपाल (ब्रह्माके मस्तक का कंकाल) को दोनों हाथोंसे थामकर। भिक्षाटनं कारितः=भिक्षाके लिये घूमनेको प्रेरित (बाध्य) किया। येन, (नियमितः)=जिससे नियुक्त हुआ। सूर्यः=रवि, नित्यमेव=सदा ही, गगने भ्राम्यति=आकाशमें घूमता है। तस्मै कर्मणे नमः=उस कर्मके लिये नमस्कार है।

व्याख्या—येन=कर्मविशेषेण, ब्रह्मा=विधिः, ब्रह्माण्डभाण्डोदरे=[ब्रह्माण्डम् एव भाण्डम्, तस्य उदरे]=निखिलविश्वरूपपात्राणां मध्ये, कुलालवत्=कुम्भकार इव, नियमितः=संनियमितः, येन=कर्मणा, विष्णुः=पुराणपुरुषः, दशावतारगहने [दशभिः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवतारैः गहनं, तस्मिन्]=मत्स्याद्यवतारधारणरूपविषमे, महासङ्कटे=अतिक्लेशकरे कर्मणि, क्षिप्तः=पातितः नियोजित इत्यर्थः । येन=कर्मणा, रुद्रः=शङ्करः, कपालपाणिपुटके [पाण्योः पुटकं पाणिपुटकं, कपालमेव पाणिपुटकं तस्मिन्] ब्रह्ममुण्डरूपभिक्षापात्रे, [भिक्षायै अटनम्, तत्]=भिक्षार्थं भ्रमणं तत्, कारितः=नियोजितः, येन=कर्मविशेषेण, प्रेरितः सूर्यः =भानुः, नित्यमेव=निरन्तरमेव, गगने=वियति, भ्राम्यति=भ्रमति, तस्मै=सर्वाधिक-महिमशालिने, कर्मणे=कार्यविशेषाय, नमोऽस्तु=नमस्कारोऽस्तु । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

भावार्थ—कर्मवशादेव ब्रह्मा नियमितरूपेण जगन्निर्माति, विष्णुश्च दशसु मत्स्याद्यवतारेषु कष्टं सहते, रुद्रश्च कपालजटितेन पाणिना भिक्षार्थं पर्यटति, सूर्योऽपि प्रत्यहं निरवकाशे वियति भ्रमणं करोति । एतेऽपि येन नियुक्तास्तत्कर्म सर्वतो बलवत्तरमवश्यं नमस्करणीयम् ।

भाषार्थ—जिसके द्वारा संसार रूपी वर्तनोंके बीच ब्रह्माको कुम्हारकी तरह (विश्वकी सृष्टिके लिये) नियुक्त किया गया है और विष्णु भगवान्‌को असह्य दुःखदायी दस (मत्स्य-कूर्म आदि) अवतार धारण करने पड़े है, जिसके कारण साक्षात् शिवजी हाथमें खप्पर लेकर भीख माँगते फिरते हैं तथा सूर्य निरन्तर आकाशमें इधर-उधर घूमते रहते हैं, उस कर्मको नमस्कार हो ॥९५॥

नैवाऽऽकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं,
विद्यापि नैव, न च यत्नकृताऽपि सेवा ।
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य, यथैव वृक्षाः ॥९६॥

अन्वयः—(पुरुषस्य) आकृतिर्नैव फलति, कुलं नैव, शीलं न, विद्यापि नैव, च यत्नकृतापि सेवा न (फलति) । (किन्तु) पूर्वतपसा सञ्चितानि पुरुषस्य भाग्यानि काले फलन्ति खलु, यथैव वृक्षाः (काले फलन्ति) ।

पदार्थ—आकृतिः=स्वरूप । नैव फलति=(कुछ भी) फल नहीं देती । कुलं नैव= (अच्छा) कुल भी नहीं ही (फल देता) । शीलं न=शील भी नहीं (फलता) । विद्यापि नैव=विद्या भी फल नहीं देती । यत्नकृता सेवा अपि न=प्रयत्नपूर्वक की हुई सेवा भी (फल नहीं देती) । खलु=निश्चय ही, पुरुषस्य=मनुष्यको । पूर्वतपसा=पूर्व जन्मकी तपस्या द्वारा । सञ्चितानि=एकत्र किये हुये । भाग्यानि=भाग्य, काले=समयपर, फलन्ति= फल देते हैं, यथैव वृक्षाः=जैसे वृक्ष (समयपर फलते हैं) ।

व्याख्या—(पुरुषस्य) आकृतिः=स्वरूपम् । नैव फलति=नूनं नहि फलदायिनी भवति, कुलम्=वंशः, नैव फलति, शीलम्=सदाचारोऽपि नैव फलति, विद्या=वेदादिज्ञानम् अपि नैव फलति, च=अपि च, यत्नकृता=प्रयत्नेन विहिता, सेवा=परिचर्या अपि न फलति, (किन्तु) पूर्वतपसा=जन्मान्तरार्जितसुकृतेन सञ्चितानि=अर्जितानि, पुरुषस्य =मनुष्यस्य, भाग्यानि=दिष्टानि, खलु=निश्चयेन, काले=अनुकूलसमये, एव, फलन्ति

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
=फलदायीनि भवन्ति तथैव, यथा, वृक्षाः=तरवः, काले एव=परिपाकसमये एव, फलन्ति=फलसंयुक्ताः जायन्ते । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

भावार्थः—यदि पूर्वसुकृतार्जितानि भाग्यानि न सन्ति चेत् आकृत्या, कुलेन, शीलेन, विद्यया, सेवया वा नरः न किमपि लब्धुं शक्नोति, भाग्यानि सन्ति चेत् यथा स्वसमये वृक्षाः फलैः शोभन्ते तथा सोऽपि कीर्त्यादिभिर्युज्यते ।

भाषार्थ—मनुष्यका न तो स्वरूप फल देता है, न कुलीनता, न तो सदाचरण फल देता है न विद्या, तथा श्रमसे की गई सेवा भी फलदायिनी नहीं होती प्रत्युत पूर्व जन्ममें सञ्चित पुण्यों द्वारा बना हुआ भाग्य ही ठीक समयसे वृक्ष की भाँति फल दिया करता है ॥ ९९ ॥

पूर्व सुकृत ही रक्षा करते हैं—

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये,
महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा,
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥ ९७ ॥

अन्वयः—पुराकृतानि पुण्यानि वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति ।

पदार्थ—पुराकृतानि=पूर्व जन्ममें किये हुए, पुण्यानि=सुकर्म, वने=जंगलमें, रणे=युद्धमें, शत्रुजलाग्निमध्ये=शत्रु, जल या अग्निके बीच, महार्णवे=घोर समुद्रमें, पर्वतमस्तके वा=अथवा पर्वतकी चोटीपर, सुप्तं=सोये हुए को, प्रमत्तं=असावधानको, विषमस्थितं वा=अथवा विपत्तिमें पड़ेको, रक्षन्ति=बचा लेते हैं ।

व्याख्या—पुरा=पूर्वजन्मनि, कृतानि=सम्पादितानि, पुण्यानि=सुकृतानि, वने=विपिने, रणे=संग्रामे, शत्रुजलाग्निमध्ये, [शत्रवश्च, जलञ्च, अग्निश्च शत्रुजलाग्नयः, तेषां मध्ये]=रिपूणां जलानां पावकस्य वान्तरे, महार्णवे=[महांश्चासावर्णवश्च इति, तस्मिन्] भीषणसागरे, पर्वतमस्तके [पर्वतस्य मस्तकम्, तस्मिन्]=गिरिशिखरे वा सुप्तम्=शयानम् प्रमत्तम्=उन्मत्तम्, असावधानमिति यावत्, विषमस्थितम्, [विषमे स्थितम् इति तत्] निम्नोन्नतमार्गे विपत्तौ वा वर्तमानं, पुरुषम्=मानवम् रक्षन्ति=पालयन्ति । उपजातिर्वृत्तम् ।

भावार्थः—यदि पुरुषेण पूर्वजन्मनि पुण्यानि कृतानि चेत् तानि पुण्यानि तं सर्वदा रक्षन्ति । स वने गच्छतु रणे वा, शत्रुभिर्जलैरग्निभिर्वा पीडितो भवतु, समुद्रे, पर्वतशिखरे वा सुप्ते प्रमत्ते विपद्गते वा तत्सुकृतप्रभावात् तस्य न कोऽपि किमपि कर्तुं शक्नोति ।

भाषार्थ—जंगलमें, संग्राममें, शत्रु पानी और अग्निके बीच, महासागरमें, पहाड़की चोटीपर, सोयेहुए, उन्मत्तावस्थामें एवं आपत्ति पड़नेपर पूर्व जन्मके किये पुण्य ही मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥ ९७ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सत्कर्मकी करणीयता—

या साधूंश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खान्हितान्द्वेषिणः,
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात् ।
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितं,
हे साधो ! व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः ॥ ९८ ॥

अन्वयः—हे साधो ! वाञ्छितं फलं भोक्तुं तां सत्क्रियामाराधय, या च खलान् साधून् करोति, मूर्खान् विदुषः करोति, द्वेषिणो हितान् करोति, परोक्षं प्रत्यक्षं कुरुते, तत्क्षणात् हालाहलम् अमृतं कुरुते । व्यसनैः विपुलेषु गुणेषु आस्थां वृथा मा कृथाः ।

पदार्थ—हे साधो = हे सज्जन ! वाञ्छितं फलं = अभिलषित मनोरथका, भोक्तुं = उपभोग करनेके लिये । तां = उस । भगवतीं सत्क्रियां = सर्वगुणशालिनी सत्क्रिया (अच्छेकर्मोंकी प्रक्रिया) की । आराधय = आराधना करो । या = जो सत्क्रिया । खलान् = दुर्जनोंको । साधून् करोति = मित्र बनाती है । मूर्खान् = मूर्खोंको । विदुषः = विद्वान् । द्वेषिणः = शत्रुओंको, हितान् करोति = मित्र बनाती है । परोक्षं = इन्द्रियोंसे ओझल पदार्थको । प्रत्यक्षं = इन्द्रियोंके गोचर । (तथा) हालाहलं = कठोरविषको । अमृतं कुरुते = अमृत बना देती है । व्यसनैः विपुलेषु = विपत्तियोंसे भरे हुए । गुणेषु = गुणोंमें । वृथा आस्थां = व्यर्थ ही प्रयत्न । माकृथाः = मत करो ।

व्याख्या—या—सत्क्रिया, खलान् = दुष्टान्, साधून् = सत्पुरुषान् करोति = विधत्ते, मूर्खान् = मूढान्, विदुषः = पण्डितान् करोति, च = किञ्च, द्वेषिणः = रिपून् हितान् = हितमार्गरतान् मित्राणीति यावत् । करोति, परोक्षम् = अदृष्टं विषयम्, प्रत्यक्षम् = दर्शनयोग्यम्, कुरुते = विदधाति, हलाहलम् = विषम्, तत्क्षणात् = द्रागेव, अमृतम् = पीयूषम्, कुरुते = विधत्ते, हे साधो = सज्जन । वाञ्छितम् = अभीष्टं फलम् = मनोरथं भोक्तुम् = साधयितुम्, ताम् = पूर्वोक्तगुणविशिष्टाम्, भगवतीम् = ऐश्वर्यशालिनीं सत्क्रियाम् = सुकृतम्, आराधय = सेवस्व । व्यसनैः = आपत्तिभिः विपुलेषु = अत्यधिकेषु, गुणेषु = विद्वत्तादिषु सत्त्वादिषु वा वृथा = निरर्थकम्, आस्थाम् = प्रयत्नम् विश्वासं वा मा कृथाः = न कुरु । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

भावार्थ—सकलाभीष्टसिद्धिरभिलष्यते चेत् सत्कार्यकरणप्रक्रियायाः अभ्यासो विधेयः, नश्वराणां गुणानामर्जने व्यर्थमेव प्रयासो न कर्तव्यः । यतो हि सैव सकलगुणानां खनिरित्यवधेयम् ।

भाषार्थ—हे सत्पुरुष ! यदि मनोरथकी सिद्धि चाहते हो तो उस ऐश्वर्यशाली अच्छे कर्मको उपासना करो, जो, दुर्जनोंको सज्जन, अज्ञानियोंको विद्वान्, शत्रुओंको हितैषी, परोक्ष (अदृष्ट) वस्तुको प्रत्यक्ष एवं विषको भी अमृत कर देता है । तुम बहुत अधिक कष्टदायक गुणों (विद्या, या सत्व रज तम) में बिना प्रयोजनके आस्था मत रखो ॥ ९८ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अविचार पूर्वक किये गए कार्यका परिणाम—

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यजातं
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामा विपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥ ९९ ॥

अन्वयः—गुणवद् अगुणवद् वा कार्यजातं कुर्वता पण्डितेन यत्नतः परिणतिः अवधार्या, अतिरभसकृतानां कर्मणां शल्यतुल्यो विपाकः आविपत्तेः हृदयदाही भवति ।

पदार्थ—गुणवद्=गुणोंसे युक्त । वा=अथवा । अगुणवद्=गुणोंसे हीन (अर्थात् अच्छे या बुरे किसीभी) । कार्यजातं=कार्यकलापको । कुर्वता=करते हुए । पण्डितेन=विद्वान् द्वारा । परिणतिः=(कार्यके) परिणामको । अवधार्या=सोच लेना चाहिये । अतिरभसकृतानां=अत्यन्त शीघ्रतामें (बिना सोचे-समझे) किये हुए । कर्मणां=कर्मोंका । आविपत्तेः=मरणपर्यन्त । शल्यतुल्यः=कांटेकी तरह । हृदयदाही=हृदयको सन्ताप देनेवाला । विपाकः भवति=परिणाम होता है ।

व्याख्या—गुणवत्=[गुणाः सन्त्यस्मिन्निति, तत्]=दयादाक्षिण्यादिगुणसंयुतम्, वा=उत, अगुणवत् [गुणवन्न भवतीति तत्]=दोषपूर्णम्, कार्यजातम्=कर्मणां समूहम्, कुर्वता=सम्पादयता, पण्डितेन [पण्डा=मतिः सञ्जाताऽस्येति तेन]=मतिमतेत्यर्थः, परिणतिः=परिणामः, यत्नतः=सम्यग्रूपेण, अवधार्या=चिन्तनीया; यतः अतिरभसकृतानाम् [अतिरभसेन कृतानि, तेषां]=अतित्वरया अविचार्यकृतानां कार्याणाम्, विपाकः=परिणामः, शल्यतुल्यः [शल्येन तुल्यः] शङ्कुसदृशः, कष्टकर इति यावत् । हृदयदाही [हृदयम् दग्धुं शीलमस्येति]=मनस्तापकरः, भवति=संजायते । मालिनी वृत्तम् ।

भावार्थः—विपश्चिता समीचीनमसमीचीनं वा यत् किमपि क्रियते तद् विचार्यैव कर्तव्यम्, अन्यथा त्वरयाऽविचार्य कृतस्य कर्मणः फलमाजीवनं कष्टकरं भवति ।

भाषार्थ—अच्छे गुणोंसे युक्त या गुणहीन (दोषपूर्ण) कार्योंको करनेवाले विद्वान्को भली भाँति परिणामके विषयमें सोच लेना चाहिए । क्योंकि बहुत शीघ्रतासे किये हुये कार्योंका फल, मरण-पर्यन्त लोहेकी कीलकी तरह, हृदयको सन्ताप देनेवाला होता है ॥ ९९ ॥

सत्कर्मसे विमुख होना मूर्खता है—

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति तिलकणांश्चान्दनैरिन्धनौघैः
सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः ।
कृत्वा कर्पूरखण्डान् वृतिमिह कुरुते कोद्रवाणां समन्तात्,
प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो यस्तपो मन्दभाग्यः ॥ १०० ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—यः मनुष्यः इमां कर्मभूमिं प्राप्य इह तपो न चरति (सः) मन्दभाग्यो वैदूर्यमय्यां स्थाल्यां चान्दनैरिन्धनौघैः तिलकणान् पचति, अर्कमूलस्य हेतोः सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैः वसुधां विलिखति, कर्पूरखण्डान्कृत्वा समन्तात् कोद्रवाणां वृतिं कुरुते ।

पदार्थ—यः मन्दभाग्यः मनुजः=जो अभागा मनुष्य । इमां कर्मभूमिं प्राप्य=इस कर्मक्षेत्रको पाकर । तपः न चरति=तपस्या (सत्कर्म) नहीं करता । (वह मानो) इह=यहीं । चान्दनैः इन्धनौघैः=चन्दनकी लकड़ियों का ढेर जलाकर । वैदूर्यमय्यां स्थाल्यां=वैडूर्यमणिकी बटलोईमें । तिलकणान्=तिलकी खलीको । पचति=पकाता है । अर्कमूलस्य हेतोः=आंककी जड़ खोदनेके लिये । वसुधां=पृथ्वीको । सौवर्णैः=सुवर्णके । लाङ्गलाग्रैः=हलकी फालसे । विलिखति=जोतता है । कर्पूरखण्डान् कृत्वा=कपूरके टुकड़े करके । कोद्रवाणां समन्तात्=कोदोंके चारों ओर । वृतिं कुरुते=बाड़ (घेरा) लगाता है ।

व्याख्या—यः=कश्चित् **मन्दभाग्यः** [मन्दं भाग्यं यस्य सः]=प्रारब्धहीनः, **मनुजः**=पुरुषः, **इमाम्**=प्रत्यक्षाम्, **कर्मभूमिम्** [कर्मणः भूमिः, ताम्]=कार्यक्षेत्रं मर्त्यलोकमिति यावत् । **प्राप्य**=लब्ध्वा, **तपः**=तपस्यां **न चरति**=नहि करोति, **सः**=जनः, **इह**=अस्मिन् लोके, **वैदूर्यमय्याम्** [विदूरात्प्रभवति इति वैदूर्यस्तस्य विकारः वैदूर्यमयी, तस्याम्]=वैदूर्यरत्ननिर्मितायामित्यर्थः, **स्थाल्याम्**=पात्रे, **चान्दनैः**=चन्दनवृक्षसंबन्धिभिः **इन्धनौघैः**=काष्ठराशिभिः, **तिलकणान्**, [तिलस्य कणाः तान्]=तिलान्नखण्डान्, **पचति**=विक्लेदयति । **अर्कमूलस्य** [अर्कस्य=मन्दारतरोः, मूलम्=मूलांशः, तस्य] **हेतोः**=कारणात्, **सौवर्णैः**=सुवर्णरचितैः, **लाङ्गलाग्रैः**=सीराग्रभागैः, **वसुधाम्**=भूमिम्, **विलिखति**=कर्षति । **कर्पूरखण्डान्**=घनसारलवान्, **कृत्वा**=विधाय, **समन्तात्** सर्वतः, **कोद्रवाणाम्**=कोरदूषणनामान्नविशेषाणाम्, **वृतिम्**=आवरणम्, **कुरुते**=सम्पादयति । **स्रग्धरा वृत्तम्** ।

भावार्थः—बहुमूल्ये वैडूर्यमये पात्रे महार्हं चन्दनकाष्ठं प्रज्वाल्य तिलपिण्याकसदृशक्षुद्रपदार्थस्य पाचनं, अर्कमूलसदृशक्षुद्रवस्तून्मूलनार्थं सौवर्णं हलाग्रं निर्माय भूमिकर्षणं तथा वायुस्पर्शमात्रेणोड्डयनशीलैः कर्पूरखण्डैः कोद्रवसंरक्षणं यथातिमूर्खत्वं सूचयति तथैवेह कर्मभूमौ मर्त्यलोके, जनिं लब्ध्वा सत्कार्याननुष्ठानमपि नरस्याभाग्यत्वसूचकमेव भवति ।

भाषार्थ—जो अभागा मनुष्य इस कर्मभूमि (मर्त्यलोक) को प्राप्त करके भी सत्कर्म नहीं करता, वह मानो वैडूर्यमणिसे बनी हुई बटलोहीमें चन्दनकी लकड़ीसे तिलके दानोंको पकाता है, मदारकी जड़को पानेके लिए सोनेके सुन्दर फल वाले हलके अग्रभागसे भूमि जोतना चाहता है, तथा कपूरके टुकड़े करके कोदोंके खेतके चारों ओर मेड़ लगाता है ॥१०१॥

अनहोनी होती नहीं, होनी टलती नहीं—

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जयत्वाहवे,
वाणिज्यं कृषिसेवने च सकला विद्याः कलाः शिक्षताम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं,
नाऽभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः ॥१०१॥

अन्वयः—(लोकः) अम्भसि मज्जतु, मेरुशिखरं यातु, आहवे शत्रून् जयतु, वाणिज्यं, कृषिसेवने च, सकला विद्याः, शिक्षतां, परं प्रयत्नं कृत्वा खगवद्विपुलमाकाशं प्रयातु, (तथापि) इह अभाव्यं न भवति, कर्मवशतः भाव्यस्य (च) नाशः कुतः ?

पदार्थ—अम्भसि मज्जतु=(मनुष्य) जलमें डूबे। मेरुशिखरं यातु=सुमेरुकी चोटी-पर चढ़े। आहवे=युद्धमें। शत्रून् जयतु=शत्रुओंको जीते। वाणिज्यं=व्यापार, कृषिसेवने=खेती या नौकरी (करे), सकलाः विद्याः कलाः च=सम्पूर्ण विद्याओं और कलाओंको। शिक्षताम्=सीखे। परं प्रयत्नं कृत्वा=अत्यन्त प्रयास करके। खगवत्=पक्षीकी भाँति। विपुलम्=विस्तृत। आकाशं=आकाशमें। प्रयातु=जावे। (किन्तु)। इह=इस संसारमें। अभाव्यं=जो नहीं होना है (वह)। न भवति=नहीं होता है। (और) कर्मवशतः=प्रारब्धके अनुसार। भाव्यस्य=जो होना है, उसका। नाशः कुतः=नाश कैसे होगा।

व्याख्या—मनुष्यः, **अम्भसि**=सलिले, **मज्जतु**=निमग्नो भवतु, **मेरुशिखरम्**=सुमेरोरग्रभागम्, **यातु**=गच्छतु, **आहवे**=संग्रामे, **शत्रून्**=अरीन्, **जयतु**=पराजितान् करोतु, **वाणिज्यम्**=क्रयविक्रयादिकम्, **कृषिसेवने** [कृषिश्च सेवनं च]=कर्षणं भृतिंच, **सकलाः**=निखिलाः, **विद्याः**=वेदवेदाङ्गमीमांसान्यायपुराणधर्मशास्त्रस्वरूपाश्चतुर्दश-संख्याकाः, **च**=किञ्च, **सकलाः कलाः**=इतिहासाद्याश्चतुःषष्टिकलाः, **शिक्षताम्**=अभ्यासं करोतु, **परम्**=अपरिमेयम्, **प्रयत्नम्**=उद्यमम्, **कृत्वा**=विधाय, **खगवत्**=पक्षीव, **विपुलम्**=महत्तरम्, **आकाशम्**=खम्, **प्रयातु**=गच्छतु, तथापि, **इह**=अस्मिन् लोके, **कर्मवशतः**=सदसत्कर्मप्रभावात्, **अभाव्यम्**=भवितुमशक्यम् असंभावीति यावत्, **न भवति**=कार्यं न सिद्धयति, तथा **भाव्यस्य**=भवितुं योग्यस्य, अवश्यंभाविनः परिणामस्य, **नाशः**=अभावः **कुतः**=कथम्? कदापि नहीति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

भावार्थः—मानवः साध्यमसाध्यं वा प्रयत्नं विदधातु, किन्तु कर्मवशात् यद् भाव्यं तदवश्यमेव भविष्यति यच्चाभाव्यं तत्कथमपि न भविष्यति, इति निश्चयः।

भाषार्थः—मनुष्य जलमें घुसे; सुमेरु पर्वतकी चोटीपर चढ़े, संग्राममें शत्रुओंको पराजित करे, व्यापार, खेती, या परिचर्या (सेवावृत्ति) करे, सम्पूर्ण विद्याओं और सभी कलाओंको सीखे तथा अत्यन्त श्रम करके आकाशमें चिड़ियोंकी भाँति उड़ने लगे, फिर भी इस संसारमें कर्मके प्रभावसे कभी भी अनहोनी बात नहीं हो सकती है तथा होनेवाली बातका निवारण भी कैसे हो सकता है ? ॥१०१॥

पूर्व सुकृतोंसे सर्वत्र अनुकूलता होती है—

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं,
सर्वो जनः सुजनतामुपयाति तस्य ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा,
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ॥१०२॥

अन्वयः—यस्य नरस्य विपुलं पूर्वसुकृतमस्ति तस्य भीमं वनं प्रधानं पुरं भवति, तस्य सर्वो जनः सुजनतामुपयाति, कृत्स्ना भूः च सन्निधिरत्नपूर्णा भवति।

भाषार्थ—यस्य नरस्य=जिस मनुष्यका। विपुलं=पर्याप्त। पूर्वसुकृतं=पहिलेका किया पुण्य है। तस्य=उसके लिये। भीमं वनं=भयङ्कर वन भी। प्रधानं पुरं भवति=विशाल नगर जैसा होता है। सर्वः जनः=सभी मनुष्य। तस्य=उसके। स्वजनताम्=आत्मीयताको। उपयाति=प्राप्त होते हैं। कृत्स्ना भूः च=और सारी पृथ्वी (उसके लिये)। सन्निधिरत्नपूर्णा=श्रेष्ठनिधियों और रत्नोंसे भरी होती है।

व्याख्या—**यस्य नरस्य**=यस्य पुरुषस्य, **विपुलम्**=अतिशयेन, **पूर्वसुकृतम्**=पूर्वजन्मकृतं पुण्यम्, **अस्ति**=विद्यते, **तस्य**=मनुष्यस्य, **भीमम्**=भीषणम्, **वनम्**=अरण्यम् अपि, **प्रधानम्**=श्रेष्ठम्, **पुरम्**=नगरम्, **भवति**=जायते, **तस्य**=तादृशजनस्य, **सर्वोऽपि**=निखिलोऽपि, **जनः**=लोकः। **स्वजनताम्**=आत्मीयताम्, **उपयाति**=प्राप्नोति, **कृत्स्ना**=सम्पूर्णा, **भूश्च**=भूमिश्च, **सन्निधिरत्नपूर्णा** [सद्भिः=महार्घैः निधिभिः=पद्मशङ्खादिभिः, रत्नैः=हीरकवैदूर्यादिभिश्च पूर्णा=सम्यक् पूरिता] **भवति**=संजायते। **वसन्ततिलकावृत्तम्।**

भावार्थः—येन पूर्वं विपुलानि सुकृतानि कृतानि तेषां फलरूपतया तेन सर्वत्रैव समृद्धिर्लभ्यते, सर्वोऽपि जनस्तस्यानुकूलो भवति, स यत्र कुत्रापि गच्छतु तत्र तस्य सुखमेव भवति, अतः सुकृतान्याचरितव्यानि।

भावार्थ—जिस मनुष्यने पूर्व जन्ममें अत्यधिक पुण्य कर्म किया है उसके लिए भीषण जंगल भी श्रेष्ठ नगर जैसा हो जाता है, सभी लोग उसके लिए सगे हो जाते हैं एवं सम्पूर्ण वसुधा महार्घनिधियों (पद्म-महापद्म आदि) तथा रत्नों (हीरे-मोती आदि) से भरी सी हो जाती है ॥१०२॥

लाभ आदिकी वास्तविकताका निदर्शन—

को लाभो-गुणिसङ्गमः, किमसुखं-प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः,
का हानिः-समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः।
कः शूरो-विजितेन्द्रियः, प्रियतमा काऽनुव्रता, किं धनं
विद्या, किं सुखमप्रवासगमनं, राज्यं किमाज्ञाफलम् ॥ १०३ ॥

अन्वयः—लाभः कः?, गुणिसङ्गमः। असुखं किम्?, प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः। हानिः का? समयच्युतिः। निपुणता का?, धर्मतत्त्वे रतिः। शूरः कः? विजितेन्द्रियः। प्रियतमा का? अनुव्रता। धनं किम्?, अप्रवासगमनम्। राज्यं किम्?, आज्ञाफलम्।

पदार्थ—लाभः कः=(वास्तविक) लाभ क्या है?, गुणिसङ्गमः=गुणवानोंका मिल जाना। असुखं किं=असुख (दुःख) क्या है?, प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः=अविद्वानों (मूर्खों) का

Prof. Medhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

संग। हानिः का=क्षति क्या है ?, समयच्युतिः=व्यर्थ समयका बीतना। निपुणता का=कुशलता क्या है ?, धर्मतत्त्वे रतिः=धर्मके रहस्य में प्रेम। शूरः कः=वीर कौन है ? विजितेन्द्रियः=जिसने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया है। प्रियतमा का=अत्यन्त प्रिया को कौन है ?, अनुव्रता=आज्ञापालन करनेवाली। धनं किं=धन क्या है ? विद्या=ज्ञान। सुखं किं=सुख क्या है ? अप्रवासगमनं=परदेश न जाना। राज्यं किं=राज्य क्या है ? आज्ञाफलम्=आदेश (शासन) की सफलता।

व्याख्या—लाभः=उपलब्धि, कः=किन्नामधेयं ? (अस्मिन् श्लोके पूर्वं प्रश्नरूपेणोक्तिर्वर्तते तत्पश्चादेव तस्योत्तरं प्रस्तूयते) पूर्वोक्तप्रश्नस्योत्तररूपेणोच्यते-गुणिसङ्गमः [गुणाः सन्ति येषां ते गुणिनः,-तेषां सङ्गमः]=सज्जनसङ्गतिः इति। असुखम्=सुखाभावः दुःखमिति यावत्, किम्=किं स्वरूपम् ? प्राज्ञेतरैः [प्राज्ञेभ्यः इतरे, तैः]=अबुद्धिमद्भिः, सह सङ्गतिः=सहवास इति। हानिः=विनाशः, का=किन्नामधेया ? समयच्युतिः [समयस्य च्युतिः]=व्यर्थमेव कालयापनम्, इति। निपुणता=प्रवीणता का ? किन्नामधेया ? धर्मतत्त्वे=वेदप्रतिपादितसारतत्त्वे रतिः=स्नेह इति, शूरः=शौर्यशाली, कः=कीदृशः ? विजितेन्द्रियः=जितेन्द्रियग्रामः। प्रियतमा=अतिशयेन प्रिया का ? अनुव्रता [अनु व्रतं यस्याः सा]=आज्ञाकारिणी। नारीति यावत्। धनम्=वित्तम्, किम् ? विद्या=वेदपुराणादिज्ञानम् इति, सुखम्=शातम्, किम्=किन्नामधेयम् ? अप्रवासगमनम्, [प्रवासाय गमनं, तन्न भवतीति]=परदेशगमनाभावः। राज्यम्=आधिपत्यम्, किम्=कीदृशम्, आज्ञाफलम् [आज्ञा एव फलं यस्य तत्]=शासनसाफल्यम्। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

भावार्थः—लाभादीनां शब्दानां लोके प्रयोगः कस्मिन्नपि अर्थे भवतु किन्तु वास्तविक्या दृष्ट्या दृश्यते चेत् गुणवत्सङ्गतिः सर्वश्रेष्ठो लाभः मूर्खसङ्गः महद्दुःखं, व्यर्थमेव कालयापनं सर्वाधिका क्षतिर्जीवनस्य, एवमेव धर्मानुराग एवं नैपुण्यं, जितेन्द्रिय एव शूरः, आज्ञावर्त्तिन्येव प्रिया, विद्यैव धनं, स्वदेशवास एव सुखं, सफलं शासनमेव राज्यमुच्यते।

भाषार्थ—(इस संसारमें) लाभ क्या है ? गुणवान् मनुष्योंका साथ, दुःख क्या है ? मूर्खोंका सङ्ग, क्षति क्या है ? समयकी हानि, चतुरता क्या है ? धर्मके सारमें अनुराग, शूर कौन है ? सम्पूर्ण इन्द्रियोंको जीतनेवाला, सबसे अधिक प्रिया (जाया) कौन है ? पतिके अनुकूल आचरण करनेवाली, धन (वस्तुतः) क्या है ? विद्या, सुख क्या है ? विदेश में न जाना एवं राज्य क्या है ? आदेशकी सफलता ॥ १०३ ॥

सत्पुरुष कहीं कहीं मिलते हैं—

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः।
परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा ॥ १०४ ॥

अन्वयः—अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः परपरिवादनिवृत्तैः [सज्जनैः] वसुधा क्वचित्क्वचित् मण्डिता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

पदार्थ—अप्रियवचनदरिद्रैः = जिन्हें कठोरवाणीका दारिद्रय है (अर्थात् जिनकी वाणीमें कठोरता कभी रहती ही नहीं) ऐसे। प्रियवचनाढ्यैः = मधुरवाणीके धनी (सर्वदा मधुरभाषी)। स्वदारपरितुष्टैः = केवल अपनी स्त्री मात्रसे सन्तुष्ट (परस्त्रीकी आकांक्षा न करनेवाले), परपरिवादननिवृत्तैः = परनिन्दा न करनेवाले। (सज्जनोंसे) वसुधा = पृथ्वी। क्वचित्क्वचित् = कहीं-कहीं। मण्डिता = अलंकृत होती है।

व्याख्या—अप्रियवचनदरिद्रैः [अप्रियाणि च यानि वचनानि, तैः दरिद्राः, तैः]—कटुवचनरहितैः प्रियवचनाढ्यैः [प्रियाणि वचनानि, तैः आढ्याः, तै] = सूनृतवादिभिः, स्वदारपरितुष्टैः [स्वे दाराः स्वदाराः, तैः परितुष्टाः तैः] = स्वभार्यामात्ररतिभिः, परपरिवादनिवृत्तैः [परेषां परिवादः तस्मात् निवृत्ताः तैः] = परनिन्दापराङ्मुखैः सज्जनैः, वसुधा = उर्वी, क्वचित् क्वचित् = यदा कदा एव, मण्डिता = शोभिता भवति न तु सर्वत्र सर्वदा चेति। तात्पर्यम्। आर्यावृत्तम्।

भावार्थः—परुषवचनं विहाय सर्वदा मधुरभाषिणः एकपत्नीव्रताः, परनिन्दापराङ्मुखाश्च सज्जनाः भुवि क्वचित्क्वचिदेव दृश्यन्ते।

भाषार्थ—कठोर बातोंके दरिद्र (कटु न बोलनेवाले), मधुर वचनोंके धनी (मृदुभाषी), अपनी जायासे ही सन्तुष्ट रहनेवाले, तथा अन्य लोगोंकी निन्दासे दूर रहनेवाले सत्पुरुषोंसे यह धरती कहीं-कहीं (कभी-कभी) सुशोभित होती है ॥१०४॥

धीरका धैर्य नहीं छूटता—

> कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्ते-
> र्नशक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम्।
> अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्ने-
> र्नाऽधः शिखा याति कदाचिदेव ॥१०५॥

अन्वय—कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेः धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुं न शक्यते। अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेः शिखा कदाचिदपि अधः न याति।

पदार्थ—धैर्यवृत्तेः = धैर्यशाली (पुरुषका)। कदर्थितस्य अपि = सताया हुआ होनेपर भी। धैर्यगुणः = धीरतारूप गुण। प्रमार्ष्टुं न शक्यते = मिटाया नहीं जा सकता। हि = क्योंकि। अधोमुखस्य कृतस्य अपि = नीचेकी ओर मुख किये हुए भी। वह्नेः = अग्निकी। शिखा = ज्वाला। कदाचिदेव = कभी भी। अधः न याति = नीचेकी ओर नहीं जाती।

व्याख्या—कदर्थितस्य = क्लेशितस्य अपि, धैर्यवृत्तेः, [धैर्येण वृत्तिः यस्यासौ] = धीरतया जीवनयापनं कुर्वतो मनुष्यस्य, धैर्यगुणः = धृतिनामको विशेषगुणः, हि = नूनम्, प्रमार्ष्टुम् = दूरीकर्तुं, न शक्यते = केनाऽपि नहि पार्यते। अधोमुखस्य, [अधः मुखं यस्य, तादृशस्य] कृतस्यापि = सम्पादितस्यापि, वह्नेः = अनलस्य, शिखा = अर्चिः, कदाचिदेव = कस्मिश्चिदपि काले, अधः नीचैः न याति = न गच्छति। उपजातिवृत्तम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावार्थ—यथा वह्निज्वाला प्रयत्नशतैरपि नाधोमुखीना कर्तुं शक्यते, यतो हि ऊर्ध्वंज्वलनमेव तत्स्वभावः, तथैव धीरः दुष्टैः संत्रासितोऽपि विपद्गतोऽपि स्वकीयं चेतोनिर्विकारतारूपं धैर्यगुणं न जहाति ।

भावार्थः—दुर्दशासे ग्रस्त भी धीर मनुष्यका धैर्यरूप गुण दूर नहीं किया जा सकता। जैसे कि नीचे मुख करके रखी हुई भी आगकी लपटें कभी नीचेकी ओर नहीं जलती हैं ॥१०५॥

धीरकी महिमा–

कान्ताकटाक्षविशिखा न लुनन्ति यस्य
चित्तं, न निर्दहति कोपकृशानुतापः ।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै-
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥१०६॥

अन्वयः—यस्य चित्तं कान्ताकटाक्षविशिखाः न लुनन्ति, कोपकृशानुतापः न निर्दहति, भूरिविषयाश्च लोभपाशैः न कर्षन्ति । स धीरः इदं कृत्स्नं लोकत्रयं जयति ।

पदार्थ—यस्य चित्तं=जिसके मनको । कान्ताकटाक्षविशिखाः=कामिनीके कटाक्षरूप बाण, न लुनन्ति=नहीं वेधते । कोपकृशानुतापः=क्रोधरूप अग्निका दाह । न निर्दहति=नहीं संतप्त करता । भूरि विषयाः=बहुतसे उपभोगके पदार्थ । लोभपाशैः=लोभरूप जालोंसे । न कर्षन्ति=(अपनी ओर) नहीं खींचते । स धीरः=वही धैर्यशाली पुरुष । इदं कृत्स्नं=इस सम्पूर्ण । लोकत्रयं=त्रिभुवनको । जयति=जीत लेता है ।

व्याख्या—यस्य=मनुष्यस्य, चित्तम्=चेतः, कान्ताकटाक्षाः=नयनप्रान्तभागाः एव विशिखाः=बाणाः ते । न लुनन्ति=न छिन्दन्ति, नाकर्षन्तीति भावः । कोपकृशानुतापः [कोप एव=रोष एव कृशानुः=पावकः, तस्य तापः=सन्तापः] न निर्दहति=न सन्तापयति, किञ्च, भूरिविषयाः=नैके भोग्यपदार्थाः, लोभपाशैः [लोभः=लोलुपता एव पाशाः=बन्धनानि, तैः] न कर्षन्ति=नाकर्षन्ति, सः=पूर्वोक्तगुणविशिष्टः धीरः=धैर्यशाली जनः, कृत्स्नम्=निखिलम्, इदम्=अवलोक्यमानं, जगत्=संसारम् अपि, जयति=स्वायत्तीकरोति । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

भावार्थः—यस्य चित्तं कामस्य क्रोधस्य लोभस्य च वशीभूतं न भवति, स एव धीरः जगद्विजयी इति मन्यते सर्वैः ।

भाषार्थः—जिस मनुष्यका चित्त कामिनियोंके कटाक्षरूप बाणोंसे घायल नहीं होता है, जिसे क्रोधरूप अग्निकी लपटें नहीं जलाती हैं तथा अनेक प्रकारकी विषय-वासनाएँ लोभ रूप जालमें जिसे नहीं फाँस सकती, वह धैर्यवान् पुरुष तीनों लोकको जीत लेता है ॥१०६॥

शूरका महत्त्व—

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तम् महीतलम् ।
क्रियते भास्करेणेव [illegible] ॥१०७॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्वयः—स्फारस्फुरिततेजसा भास्करेणेव एकेनापि हि शूरेण महीतलं पादाक्रान्तं क्रियते ।

पदार्थ—हि = क्योंकि, स्फारस्फुरिततेजसा = अत्यन्त चमकते हुए तेजवाले, भास्करेण इव = सूर्यसे जैसे । एकेन अपि शूरेण = एकही पराक्रमी द्वारा महीतलं = भूतलको । पादाक्रान्तं क्रियते = व्याप्त और धर्षित किया जाता है ।

व्याख्या—हि = खलु, **स्फारस्फुरिततेजसा** [स्फारम् = स्फीतं यथा स्यात्तथा स्फुरितम् = प्रसृतम् , तेजः = प्रभावः यस्य, तादृशेन] **भास्करेणेव** = प्रभाकरेणेव, **एकेन** = अद्वितीयेन, **शूरेण** = शौर्यशालिना जनेनापि, **महीतलम्** = भूतलम् , **पादाक्रान्तम्** [पादैः = चरणैः किरणैश्च आक्रान्तम् = धर्षितं व्याप्तञ्च] **क्रियते** = विधीयते वा । अनुष्टुब्वृत्तम् ।

भावार्थः—यथातितेजस्वी सूर्यः एकोऽपि, निखिलं लोकं स्वकिरणैर्व्याप्तं करोति तथैवैकोऽपि शूरः स्वविक्रमेण सकलं जगदाक्रान्तं करोति ।

भाषार्थ—अत्यन्त विस्तृत एवं तेजवाले सूर्यकी तरह केवल एक ही पराक्रमी मनुष्य भी सम्पूर्ण भूमण्डलको पादाक्रान्त (अपने आधीन तथा किरणोंसे व्याप्त) कर सकता है ॥१०७॥

शीलकी महिमा—

वह्निस्तस्य जलायते, जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणा-
न्मेरुः स्वल्पशिलायते, मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते ।
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते
यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति ॥१०८॥

अन्वयः—यस्याङ्गे अखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति, तस्य, वह्निः जलायते, जलनिधिः कुल्यायते, मेरुः तत्क्षणात् स्वल्पशिलायते, मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते, व्यालो माल्यगुणायते, विषरसः पीयूषवर्षायते ।

पदार्थ—यस्य अङ्गे = जिसके शरीरमें । अखिललोकवल्लभतमं = सारे संसारको अत्यन्त प्रिय । शीलं = स्वभाव । समुन्मीलति = विराजता है । तस्य = उसके लिये । वह्निः जलायते = अग्नि भी जल जैसा शीतल हो जाता है । जलनिधिः = समुद्र । कुल्यायते = नहरकी तरह सुलङ्घ्य हो जाता है । तत्क्षणात् = तत्काल । मेरुः = सुमेरु पर्वत । स्वल्पशिलायते = छोटे पत्थर जैसा हो जाता है । मृगपतिः = सिंह । सद्यः = तत्काल । कुरङ्गायते = मृग जैसा हो जाता है । व्यालः = सर्प । माल्यगुणायते = मालाके धागे जैसा लगता है । (और) विषरसः = विषका जल भी । पीयूषवर्षायते = अमृतकी वर्षा जैसा हो जाता है ।

व्याख्या—यस्य = मनुष्यस्य, अङ्गे = शरीरे प्रति यावत्, **अखिललोकवल्लभतमम्** [अखिलानाम् = सकलानाम् , लोकानाम् = जनानाम् , वल्लभतमम् = अतिशयेन प्रियम्]

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

शीलम्=सदाचारः, समुन्मीलति=विराजते, तस्य=जनस्य (पुरस्तात्), वह्निः=अनलः, जलायते=[जलमिवाचरतीति] सलिलमिव शीतलं जायते, जलनिधिः=[जलानां निधिः] सागरः, तत्क्षणात्=तत्काले एव, कुल्यायते=[कुल्या इवाचरतीति] कृत्रिमनदीव आचरति, मेरुः=सुमेरुपर्वतः, स्वल्पशिलायते=[स्वल्पशिला=लघुपाषाणखण्ड इवाचरति] मृगपतिः [मृगाणां मृगेषु वा पतिः]=केसरी, सद्यः=झटिति, कुरङ्गायते=हरिणायते, व्यालः=उरगः, माल्यगुणायते, [माल्यम्=कुसुममाला, एव गुणः=रज्जुः स इवाचरति] विषरसः=गरलद्रवः, पीयूषवर्षायते=[पीयूषवर्षेवाचरतीति] अमृतवर्षणमिव सुखं ददातीति तात्पर्यम्। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः।

भावार्थः—सर्वजनप्रियं शीलं यस्य वर्तते तस्य कृतेऽतिदुष्कराण्यपि कार्याणि सुकराणि भवन्ति। यतो हि शीलेन स परेषां गुणं स्वल्पं स्वानुकूलं च कर्तुं शक्नोति। यथा सच्छीलः वह्निं जलमिव गृहीतुं, समुद्रं क्षुद्रसरितमिवतरितुं, मेरुं च लघुपाषाणखण्डमिव लङ्घयितुं, सिंहं मृगमिव कातरं कर्तुं, सर्पं च मालामिव धारयितुं, विषं चामृतमिव पातुं स प्रभवति।

भाषार्थ—सभी लोगोंका सबसे प्यारा सदाचार, जिस मनुष्यमें है, उसके लिए अग्नि जलके समान हो जाती है, सागर भी छोटा सोता हो जाता है, सुमेरु पहाड़ भी लघु चट्टान बन जाता है, सिंह मृगकी भाँति लगता है, (भयंकर) सर्प फूलोंकी माला बन जाता है, तथा विषका रस भी सुधाकी धाराके समान (सुखकारी) हो जाता है [अर्थात् सदाचारी व्यक्ति विषमसे विषम परिस्थितिको भी आसानी से पार कर जाता है।] ॥१०८॥

दृढ प्रतिज्ञकी महिमा—

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम्।
तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति,
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ॥१०९॥

श्रीमद्भर्तृहरिप्रणीतं नीतिशतकं समाप्तम्।

अन्वयः—सत्यव्रतव्यसनिनः तेजस्विनः असूनपि सुखं सन्त्यजन्ति, (किन्तु) लज्जागुणौघजननीम् अत्यन्तशुद्धहृदयाम्, अनुवर्तमानां स्वां जननीमिव प्रतिज्ञां पुनर्न (सन्त्यजन्ति)।

पदार्थ—सत्यव्रतव्यसनिनः=सत्य बोलनेके स्वभाववाले। तेजस्विनः=तेजस्वी व्यक्ति असून् अपि=प्राणोंको भी। सुखं=सुखपूर्वक। त्यजन्ति=छोड़ देते हैं। (किन्तु)। लज्जागुणौघजननीं=लज्जारूप गुणोंके समूहको उत्पन्न करनेवाली। स्वां जननीम् इव=अपनी माताकी तरह। अत्यन्त शुद्धहृदयां=अत्यन्त शुद्ध हृदयवाली। अनुवर्तमानां=अनुकूल आचरण करनेवाली। प्रतिज्ञां=प्रतिज्ञाको। पुनः=तो। न संत्यजन्ति=नहीं छोड़ते हैं।

व्याख्या—सत्यव्रतव्यसनिनः, [सत्यम्=तथ्यभाषणम्, एवं व्रतं=नियमः, तदेव व्यसनम्=शीलं येषां ते, यद्वा सत्यव्रते=सत्यपालने व्यसनम्=प्रत्यासक्तिर्येषां तादृशाः]

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तेजस्विनः = प्रभावशीलाः मनुष्याः, असून् = प्राणान् अपि सुखम् = सानन्दम्, संत्यजन्ति = समुत्सृजन्ति, लज्जाद्गुणौघजननीम् = [लज्जागुणाः — सङ्कोचस्वरूपाः गुणास्तेषाम् ओघः = समूहः, तस्य जननीम् = समुत्पादिकाम्] अत्यन्तशुद्धहृदयाम् [अत्यन्तम् = अत्यधिकं शुद्धम् = निर्मलम्, हृदयम् = चित्तम् यस्याः सा ताम्], अनुवर्तमानाम् [अनु = पश्चात् वर्तमाना = विद्यमाना, ताम्] सदा सममावेन स्थितामित्यर्थः, स्वाम् = स्वीयाम्, जननीम् = मातरमिव, प्रतिज्ञाम् = दृढनिश्चयम् पुनः = भूयः, न सन्त्यजन्तीति तात्पर्यम्। वसन्ततिलका वृत्तम्।

भावार्थः—ये तेजस्विनः पुरुषाः सत्यवक्तारो भवन्ति, ते प्राणान् सुखेन त्यक्तुं स्वीकुर्वन्ति किन्तु लज्जादिगुणान् शिक्षयन्तीं शुद्धहृदयां सर्वदा हिताचरणं कुर्वतीं स्वां जननीमिव प्रतिज्ञां न कदापि हातुं पारयन्ति।

भाषार्थ—सत्यकी रक्षामें तत्पर तेजस्वी मनुष्य अपने प्राणोंको भी सुखके साथ छोड़ सकते हैं परन्तु लज्जा (संकोच) रूपी गुणोंकी राशिको उत्पन्न करनेवाली, अत्यन्त पवित्र हृदय और भावनाओं वाली, सदा सुरक्षा के लिए साथ रहनेवाली अपनी माताकी भाँति प्रतिज्ञा (दृढ़ निश्चय) को नहीं छोड़ते हैं ॥१०९॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

नीतिशतकके कुछ संस्करणों एवं हस्तलिखित प्रतियोंमें यत्र तत्र निम्नलिखित श्लोक भी पाये जाते हैं—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साप्यन्यमिच्छति जनं, स जनोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥१॥

अर्थ—मैं जिस (स्त्री) का सदा चिन्तन करता हूँ वह (स्त्री) मुझे न चाहकर किसी दूसरे (पुरुष) को चाहती है। किन्तु वह पुरुष (जिसे वह चाहती है) उसपर आसक्त न होकर किसी अन्य ही स्त्रीपर आसक्त है। कोई स्त्री ऐसी भी है जो मुझे चाहती है (पर मैं उसे नहीं चाहता)। धिक्कार है उस स्त्रीको (जिसे मैं चाहता हूँ), उस पुरुषको (जिसे वह चाहती है), कामदेवको (जिसने सबको व्याकुल कर रखा है), इस स्त्रीको (जो मेरे लिये मर रही है) और मुझे भी ॥ १ ॥

जातः कूर्मः स एकः पृथुभुवनभरायार्पितं येन पृष्ठं,
श्लाघ्यं जन्म ध्रुवस्य भ्रमति नियमितं यत्र तेजस्विचक्रम् ।
सञ्जातव्यर्थपक्षाः परिहितकरणे नोपरिष्टान्न चाधो
ब्रह्माण्डोदुम्बरान्तर्मशकवदपरे जन्तवो जातनष्टाः ॥ २ ॥

अर्थ—उस कच्छप (विष्णु के द्वितीयावतार) का जन्म सफल है, जिसने इतने विशाल भुवनके भारको वहन करनेके लिये अपनी पीठ देदी, प्रशंसनीय जन्म है उस ध्रुव (नक्षत्र) का जिसके आसपास चमकते तारोंका समूह चक्कर काटता है, दूसरोंकी भलाई चाहनेवाला कोई भी व्यक्ति आजतक न तो ध्रुवसे ऊपर जा सका और न कूर्मसे नीचे। शेष तो सभी जन्तु ब्रह्माण्डमें गूलरके भीतर पड़े हुए कीड़ोंकी तरह जन्मते हैं और मरते हैं। उनकी क्या गिनती हो सकती है ॥ २ ॥

वरं शृङ्गोत्सङ्गाद् गुरुशिखरिणः क्वापि विषमे
पतित्वाऽयं कायः कठिनदृषदन्ते विगलितः ।
वरं न्यस्तो हस्तः फणिपतिमुखे तीक्ष्णदशने
वरं वह्नौ पातस्तदपि न कृतः शीलविलयः ॥ ३ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थ—यह शरीर ऊंचे पहाड़से गिरकर कठोर शिलापर पड़कर चूर्ण हो जाय तब भी अच्छा, हाथ तीखे दाढ़ोंवाले जहरीले सर्पके मुखमें पड़जाय तब भी अच्छा, दहकती अग्निमें गिरकर भस्म हो गया वह भी अच्छा, किन्तु शीलका त्याग हो जाना किसी भी स्थितिमें अच्छा नहीं ॥ ३ ॥

यथा कन्दुकपातेनोत्पतत्यार्यः पतन्नपि ।
तथा त्वनार्यः पतति मृत्पिण्डपतनं यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—सज्जन व्यक्ति गेंदकी तरह नीचे गिरकर भी ऊपर उछलता है (अर्थात् विपत्तिमें भी स्तर नहीं गिराता) किन्तु नीच व्यक्ति मिट्टीके लोंदेकी तरह भूमिपर गिरा तो उसीमें चिपक जाता है (ऊपर उठ नहीं सकता) ॥ ४ ॥

अयममृतनिधानं नायकोऽप्योषधीनां
शतभिषगनुयातः शम्भुमूर्ध्नोऽवतंसः ।
विरहयति न चैनं राजयक्ष्मा शशाङ्कं,
हतविधिपरिपाकः केन वा लङ्घनीयः ? ॥ ५ ॥

अर्थ—यह (चन्द्रमा) अमृतका कोश है, औषधियोंका नायक है, शतभिषक् (शतभिषा नामक नक्षत्र और सैकड़ों वैद्य) से घिरा रहता है। भगवान् शम्भु (मृत्युंजय) के मस्तकका आभरण है फिर भी इस चन्द्रमाको राज्यक्ष्मा नहीं छोड़ता। दुर्भाग्यके परिणामको कौन लांघ सकता है ? ॥ ५ ॥

प्रियसख ! विपद्दण्डाघातप्रपातपरम्परा-
परिचयबले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः ।
मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालवद्-
भ्रमयति मनो नो जानीमः मित्र विधास्यति ? ॥ ६ ॥

अर्थ—हे मित्र ! यह शठ विधाता प्रौढ़ कुम्हारकी तरह गोलोमिट्टी जैसे चित्तका गोला बनाकर विपत्तिरूप दण्डसे बराबर पीटकर उसे दृढ़ बनाता हुआ, चिन्तारूप चक्रमें घुमा घुमाकर न जाने क्या कर डालेगा ? ॥ ६ ॥

विरम विरमायासादस्माद् दुरध्यवसायतो
विपदि महतां धैर्यध्वंसं यदीक्षितुमीहसे ।
अयि जड विधे ! कल्पापायेऽप्यपेतनिजक्रमाः
कुलशिखरिणः क्षुद्रा नैते न वा जलराशयः ॥७॥

अर्थ—ऐ जड़ विधाता ! अपने इस निन्दनीय कर्मको छोड़दो जोकि तुम विपत्तिमें सज्जनोंको धैर्यच्युत होते देखना चाहते हो। ये सज्जन प्रलयकालमें भी, अपनी मर्यादाका

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

उल्लङ्घन कर देनेवाले कुलपर्वतों या समुद्रोंकी तरह नहीं है। (अर्थात् कुलाचल या समुद्र प्रलयकालमें अपनी मर्यादाका उल्लङ्घन कर देते हैं किन्तु सज्जन प्रलयमें भी अमर्यादित नहीं होते ॥७॥

देवेन प्रभुणा स्वयं जगति यद्यस्य प्रमाणीकृतं
तत्तस्योपनमेन्मनागपि महान्नैवाश्रयः कारणम् ।
सर्वाशापरिपूरके जलधरे वर्षत्यपि प्रत्यहं
सूक्ष्मा एव पतन्ति चातकमुखे द्वित्राः पयोबिन्दवः ॥८॥

अर्थ—शक्तिशाली विधाताने जगत्में जो वस्तु जिसके लिये नियत कर दी है उसे वही मिल पाती है। उससे अधिक पानेके लिये बड़ेसे बड़ा आश्रय भी व्यर्थ होता है जैसे कि सबके मनोरथ पूर्ण करनेवाले मेघ प्रतिदिन निरन्तर भी बरसते रहें तब भी चातकके मुखमें दो ही तीन बूँदें जा पाती हैं ॥८॥

शुभ्रं सद्म सविभ्रमा युवतयः श्वेतातपत्रोज्ज्वला
लक्ष्मीरित्यनुभूयते चिरमनुस्यूते शुभे कर्मणि ।
विच्छिन्ने नितरामनङ्गकलहक्रीडात्रुटत्तन्तुकं
मुक्ताजालमिव प्रयाति झटिति भ्रश्यद्दिशो दृश्यताम् ॥९॥

अर्थ—अच्छे कर्मोंका यदि फल भोगना होता है तो चिरकालतक अच्छा घर, विलासिनी युवतियाँ, शुभ्रच्छत्र जैसी चमकती लक्ष्मी आदि चिरकालतक उपलब्ध होती रहती हैं। यदि बुरे कर्मोंका फल भोगना है तो रतिक्रीड़ामें मोतीकी लड़ टूटनेपर चारों ओर बिखरते दानोंकी भाँति सारा ऐश्वर्य क्षणभरमें देखते देखते नष्ट हो जाता है ॥९॥

—:०:—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

नीतिशतकश्लोकानुक्रमणिका

	पृ०
अकरुणत्वम्	४५
अज्ञः सुख	२
अधिगतपरमार्थान्	१४
अप्रियवचन दरिद्रै	९०
अम्भोजिनीवन०	१५
अयममृतनिधानं	९७
असन्तो नाभ्यर्थ्या	२५
आशा कीर्तिः	४१
आरम्भगुर्वी	५२
आलस्यं हि	७४
इतः स्वपिति केशवः	६६
उद्भासिताऽखिल०	५१
एकेनापि हि	६२
एके सत्पुरुषाः	६४
एको देवः केशवो	५९
ऐश्वर्यस्य विभूषणं	७१
कदर्थितस्यापि	६१
करे श्लाघ्यस्त्यागः	५६
कर्मायत्तं फलं पुंसां	७७
कान्ताकटाक्षविशिखा	९२
किं तेन हेम गिरिणा	६९
कुसुमस्तवकस्येव	२९
केयूराणि न	१६
को लाभो गुणिसङ्गमः	८९
कृमिकुलचित्तं	७
क्वचित् पृथ्वीशय्यः	७०
क्षान्तिश्चेत्	१८
क्षीरेणात्मगतोदकाय हि	६५
क्षुत्क्षामोऽपि	२६
खल्वाटो दिवसेश्वरस्य	७७
गुणवदगुणवद्वा	८६
छिन्नोऽपि रोहति तरुः	७५
जयन्ति ते	२१
जाड्यं धियो	२१
जाड्यं ह्रीमति गण्यते	४६
जातः कूर्मः	९६
जातिर्यातु रसातलं	३४
तानीन्द्रियाण्यविकलानि	३५
तृष्णां छिन्धि भज क्षमां	६७
त्वमेव चातकाधारो	४३
दाक्षिण्यं स्वजने	२०
दानं भोगो नाशः	३७
दिक्कालाद्यनवच्छिन्न०	१
दुर्जनः परिहर्तव्यो	४६
देवेनप्रभुणा	९८
दौर्मन्त्र्यान्नृपतिः	३६
न कश्चिच्चण्डकोपानां	४९
नमस्यामो देवान्	८१
नम्रत्वेनोन्नमतः	६०
निन्दन्तु नीतिनिपुणाः	७३
नेता यस्य बृहस्पतिः	७६
नैवाकृतिः फलति	८३
पत्रं नैव यदा करीरविटपे	८०
पद्माकरं दिनकरो	६३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

	पृ०
परिक्षीणः कश्चित्	३९
परिवर्तिनि	२९
पापान्निवारयति	६२
प्रदानं प्रच्छन्नं	५५
प्रसह्य मणि०	२
प्राणाघातान्निवृत्तिः	२३
प्रारभ्यते न	२४
प्रियसख	९७
प्रीणाति यः	४९
बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः	१
ब्रह्मा येन	८२
भग्नाशस्य	७३
भवन्ति नम्रास्तरवः	६१
भीमं वनं भवति	८८
मज्जत्वम्भसि	८७
मणिःशाणोल्लीढः	३८
मनसि वचसि काये	६८
मृगमीनसज्जनानां	५२
मौनान्मूकः	५०
यः प्रीणयेत्सुचरितैः	५८
यथा कन्दुक	९७
यदचेतनो	३३
यदा किञ्चिज्ज्ञो	६
यद्धात्रा निज भाल०	४२
यस्यास्ति वित्त	३६
या साधूंश्च	९६
यां चिन्तयामि	८५
येषां न विद्या	११
रत्नैर्महार्हैं	७०
रविनिशाकरयोर	६७
राजन्! दुधुक्षसि	४०
रे रे चातक !	४४
लज्जागुणौघजननीं	९४
लभेत सिकतासु	३
लाङ्गूल चालन०	२८
लोभश्चेदगुणेन किं	४७
वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये	८४
वरं पक्षच्छेदः	३२
वरं पर्वतदुर्गेषु	१२
वरं शृंगात्संगात्	६६
वहति भुवनश्रेणि	३१
वह्निस्तस्य जलायते	९३
वान्छा सज्जनसंगमे	५३
विद्यानाम नरस्य	१७
विपदि धैर्यमथाभ्युदये	५४
विरमविरमा	९७
व्यालं बाल०	४
शक्यो वारयितुं	९
शशिदिवाकरयोः	७८
शशी दिवसधूसरो	४८
शास्त्रोपस्कृत०	१२
शिरः शार्वं	८
शुभ्रं सद्म	६८
श्रोत्रं श्रुतनैव न कुण्डलेन	६२
सत्याऽनृता च	४१
सन्तप्ताऽयसि	५७
सन्त्यन्येऽपि	३०
सम्पत्सु महतां	५७
साहित्यसङ्गीत०	१०
सिंहः शिशुरपि	३३
सूनुः सच्चारितः	२२
सृजति तावदशेष०	७९
स्थाल्यां वैडूर्यमय्यां	८६
स्वल्पस्नायुवसा०	२७
[illegible]	५
हर्तुर्याति न	१३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

१२ वैशाख २०४१

४ वैशाख २०४१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

हमारे महत्त्वपूर्ण छात्रोपयोगी प्रकाशन

जिनमें मूलपाठ के साथ संस्कृत-हिन्दी टीका, भूमिका, नोट्स एवं अन्य छात्रोपयोगी सामग्री है :

	सम्पादक	
उत्तररामचरित	आनन्द स्वरूप	१३.००
कादम्बरी (पूर्वार्द्धम्)	हरिश्चन्द्र विद्यालङ्कार	२०.००
कुमारसंभव	जगदीशलाल शास्त्री (१–५ सर्ग)	५.७५
चन्द्रालोक	सुबोधचन्द्र पन्त	६.००
जातकमाला संपूर्ण	सूर्यनारायण चौधरी	१२.५०
दशकुमारचरित	सुबोधचन्द्र पन्त	१०.००
दूतघटोत्कच	रमाशंकर त्रिपाठी	२.००
दूतवाक्य	रमाशंकर त्रिपाठी	२.५०
ध्वन्यालोक (दो भागों में)	रामसागर त्रिपाठी	२८.००
नागानन्द नाटक	संसारचन्द्र	५.००
नीतिशतक	जनार्दन शास्त्री	३.००
पंचतंत्र	श्यामाचरण पाण्डेय	१५.००
प्रतिमानाटक	श्रीधरानन्द शास्त्री	३.५०
प्रसन्नराघव	रमाशंकर त्रिपाठी	८.००
बालचरित्र	कमलेश त्रिपाठी	२.५०
भट्टिकाव्य (दो भागों में)	रामगोविन्द शुक्ल (१–८ सर्ग)	१३.००
मालविकाग्निमित्र	संसारचन्द्र	७.५०
मेघदूत	संसारचन्द्र	७.००
मृच्छकटिक	रमाशंकर त्रिपाठी	१८.००
रघुवंश	धारादत्त शास्त्री (१–१९ सर्ग)	३०
रत्नावली नाटिका	रमाशंकर त्रिपाठी	
रामाभ्युदययात्रा	श्यामाचरण पाण्डेय	
वृत्तरत्नाकर	श्रीधरानन्द शास्त्री	
वेणीसंहार	रमाशंकर त्रिपाठी	
शिशुपालवध	जनार्दन शास्त्री पाण्डेय (१-	
शुकनासोपदेश	मोहनदेव पन्त	
सौन्दरनन्द काव्य	सूर्यनारायण चौधरी	
स्वप्नवासवदत्त	जयपाल विद्यालंकार	
हर्षचरित (प्रथम उच्छ्वास)	रतिनाथ झा	
हितोपदेश—मित्रलाभ	विश्वनाथ शर्मा	

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली : वाराणसी : पटना

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal